भारती की ललित रचनाएं

अंतर्भारतीय पुस्तकमाला

भारती की ललित रचनाएं

संपादक
पेरियस्वामि तूरन

अनुवाद
सरस्वती रामनाथ

नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया

अनुक्रम

भूमिका

किसी भी भाषा की गद्य शैली और बोलचाल की भाषा अपने आविर्भाव काल में एक ही रही होगी । लेकिन मुद्रण सुविधा न होने के कारण मौखिक रूप से कहे गये अनुभव, संस्मरण एवं कहानियों को उसी गद्य शैली में अंकित करके सुरक्षित रखा न जा सका । जब ताड़पत्रों पर कील के सहारे लिखना शुरू किया गया, उस जमाने में भी कविता के समान गद्य को लिपिबद्ध करना उतना आसान नहीं था । भावपूर्ण कविताओं को लिपिबद्ध करना और कंठस्थ करना, गद्य की तुलना में अधिक आसान रहा होगा । शायद इसीलिए सबसे पहले कविता या काव्य रचना का जन्म हुआ होगा और यही क्रम आगे चलता रहा । अति प्राचीन काल में भी तमिल भाषा, जो सुविकसित, परिमार्जित तथा व्याकरणबद्ध थी, उसका भी यही हाल रहा होगा ऐसा कहना तर्कसंगत है ।

आठवीं सदी में लिखित 'इरैयनार कळवियल' ही प्राचीन काल की तमिल गद्य शैली के नमूने के रूप में हमें प्राप्त है । एक-दो सदियों के बाद 'तोलकाप्पियम्' और 'पत्तुप्पाट्टु' की टीका कई लोगों ने तैयार की । इलमपूरणार, पेरासिरियर, नच्चिनारकिनियर, परिमेलळगर, सेनावरैयर, अडियारक्कु नल्लार, जैसे कई विद्वानों ने कई विशिष्ट ग्रंथों की सुंदर व्याख्या लिखी है । इन लोगों का समय बारहवीं सदी से लेकर सोलहवीं सदी के अंत तक की लंबी अवधि है । यह कहना भी मुश्किल है कि इन गद्य लेखकों की व्याख्या एवं टीका प्रामाणिक रूप में हम तक पहुंची है । यह मानना ही तर्कसंगत होगा कि पहले ये मौखिक रूप में रहीं और बाद में ताड़पत्रों पर लिपिबद्ध कर दी गयीं ।

ये टीकाकार विस्तार से व्याख्या लिख न पाये इसलिए इन्होंने एक गद्य शैली को अपनाया जो कविता के समान कवित्वमयी और अपरिपुष्ट थी ।

अडियारक्कु नल्लार ने 'शिलपदिकारम्' की व्याख्या लिखते समय पहले की दो पंक्तियों की व्याख्या विस्तृत रूप में देकर लिखा है कि इस तरह विस्तृत व्याख्या देना असंभव होने के कारण अन्य पदों की व्याख्या संक्षिप्त रूप में दी जा रही है ।

'शिल्पधिकारम्' में हम देखते हैं कि पद्यों के बीच में गद्य को स्थान मिला है। वैसे ही संघकाल के कवि 'भारतम् पाडिय पेरुंदेवनार' ने अपने ग्रंथ में 'वेणबा', 'अगवलपा' (तमिल के काव्य छंदों के नाम) का अधिक प्रयोग किया है और बीच-बीच में गद्य में भी कुछ लिखा है। मगर इन सबको तमिल गद्य शैली के लिए उदाहरण के रूप में ग्रहण करना

उचित न होगा । लेकिन उस जमाने में जो गद्य शैली अपनायी गयी थी वह किस रूप में हमें मिली है, बस इतना ही इन ग्रंथों से हम जान सकते हैं ।

'श्री पुराण', 'सत्य चिंतामणी', इत्यादि ग्रंथों से हम जान लेते हैं कि मध्य काल में जैन धर्मावलंबियों में कुछ लोगों ने संस्कृत मिश्रित 'मणिप्रवाल' शैली को अपनाया था। वैष्णव आचार्यों ने भी 'नालायिर दिव्य प्रबंधम्' का जो भाष्य लिखा है वह भी 'मणिप्रवाल' शैली में ही है। शैव सिद्धांत के ग्रंथ की व्याख्या शैव संप्रदाय के पंडितों ने गद्य में प्रस्तुत की है। लेकिन इन सबको तमिल गद्य शैली के विकास के लिए उदाहरण के रूप में हम ले नहीं पाते ।

हां, इतना कह सकते हैं कि जब भारत में छापेखाने का प्रयोग होने लगा तब से गद्य का विकास शुरू हुआ । इसके उपरांत ही गद्य के ग्रंथों का विकास होने लगा । ईसाई धर्म के प्रचारार्थ 'बाइबल' का अनुवाद तमिल गद्य में हुआ ।

बारहवीं सदी से लेकर सोलहवीं सदी तक के जो शिलालेख हमें उपलब्ध हैं, उनसे पता चलता है कि तमिल गद्य का विकास इसी रूप में होता रहा पर शिल्पियों को तमिल भाषा का अच्छा ज्ञान न होने के कारण शिलालेखों में गलतियां बहुत रह गयीं । इसलिए उन्हें भी गद्य के विकास के दृष्टांत के रूप में नहीं लिया जा सकता ।

बेशी (बेस्की) नामक इटली के एक मिशनरी पादरी अठारहवीं सदी के आरंभ में तमिलनाडु आये । उन्होंने तमिल भाषा का गहरा अध्ययन किया और वीरमामुनिवर नाम से तमिल में काव्य रचना की । इसके अतिरिक्त 'अविवेकपूर्ण गुरु कथा', 'वेडियर ओऴुक्कम' आदि गद्य काव्य भी लिखा है। इनके पहले ही सत्रहवीं शताब्दी के मध्य में जो ईसाई पादरी भारत आये थे जो तत्व बोधक स्वामी के नाम से यहां रहे और जिन्होंने इसी धरती में अंतिम सांस ली थी, उन्होंने संस्कृत मिश्रित शैली में कई ग्रंथों की रचना की है । वीरमामुनिवर लिखित 'अविवेकपूर्ण गुरु कथा' हास्य रस प्रधान है । इनकी गद्य शैली सरल होने के कारण लोगों ने इसे बड़े चाव से पढ़ा। इनके परवर्ती लेखक शिवज्ञान मुनिवर ने 'शिवज्ञानबोधम्' पर 'द्राविड़ महामाडियम्' के नाम से सर्वोत्तम विषय प्रधान ग्रंथ की रचना की है ।

उन्नीसवीं सदी के प्रारंभ में तांडवराय मुदलियार ने तमिल गद्य शैली को एक विलक्षण नवीनता प्रदान की । इनके द्वारा रचित पंचतंत्र कहानियां तत्कालीन तमिल गद्य का एक सुंदर नमूना हैं। इनकी शैली सरल, बोधगम्य और प्रवाहमयी थी । 'कथा मंजरी' के नाम से इन्होंने एक गद्य ग्रंथ का संकलन किया है ।

इनके परवर्ती लेखकों में याळपाणम (सिलोन) के निवासी आरुमुख नावलर का स्थान महत्वपूर्ण है । इनका जन्म सन् 1823 ई. में हुआ । इन्होंने तमिल में, 'पेरियपुराण वचनम्' तिरुविळैयाडल पुराण वचनम्' व 'कंदपुराण वचनम्' इत्यादि कई सुंदर गद्य ग्रंथों की रचना की। विद्यार्थियों के लिए इन्होंने पाठ्य पुस्तकें तैयार कीं । सरल सुबोध गद्य शैली का मार्गदर्शन करने का सारा श्रेय इनको जाता है । तिरुवरुट्प्रकाश वळळलार नामक

रामलिंगस्वामी ने 'मणुमुरै कंड वाचकम्', 'जीविकारुणयम्' आदि कई ग्रंथ लिखे हैं । इनके उपरांत, बीरास्वामी चेट्टियार ने 'विनोद रस मंजरी' नामक गद्य ग्रंथ की रचना की ।

मायूरम् वेदनायकम् पिल्लै ने सन् 1876 में 'प्रताप मुदलियार चरित्रम्' नामक एक पुस्तक लिखी। इसमें हास्य रस का पुट है । यही तमिल में प्रकाशित सबसे पहला उपन्यास माना जाता है। सन् 1887 में इन्होंने 'सुगुण सुंदरी' नामक एक और उपन्यास लिखा। वेदनायकम् पिल्लै की गद्य शैली ऐसी है मानो दो व्यक्ति वार्तालाप कर रहे हों ।

राजम् अय्यर ने सन् 1872-1898 में 'कमलांबाल चरित्रम्' नामक सुंदर उपन्यास प्रकाशित किया । इनके उपरांत मादव्वया ने 'पद्मावती चरित्रम्' (1898) नामक उपन्यास, तथा दो और उपन्यास और 'कुचिकर कुट्टी कदैकळ' शीर्षक से कई कहानियां परिमार्जित गद्य शैली में लिखी हैं ।

दामोदरम पिल्लै ने 'चुळामणी वचनम्' नामक ग्रंथ विशिष्ट शब्दावली का प्रयोग करके उत्कृष्ट शैली में लिखा है । सूर्य नारायण शास्त्री ने भी अपनी 'मदिवाणन कथा' कुछ ऐसी ही उत्कृष्ट शैली में लिखी है । इन्होंने कई नाटक और ग्रंथ भी रचे हैं ।

'इल्लाण्मै', 'तमिल नावलर चरित्रम्' आदि ग्रंथों के रचयिता श्री कवमसुंदरम पिल्लै थाळपाणम (सिलोन) के निवासी थे ।

बीसवीं सदी के प्रारंभ के कुछ बाद ही तमिल गद्य साहित्य का सर्वोन्मुख विकास होने लगा। साहित्य की विभिन्न विधाओं में ग्रंथों की रचना होने लगी। मरैमलैयाडिकल ने शुद्ध तमिल की विशिष्ट शैली अपना ली। श्री वी. कल्याण सुंदर मुदलियार ने एक मंजी हुई प्रवाहमयी शैली को अपने भाषण और लेखन में अपनाकर तमिल गद्य शैली को एक नया एवं सुंदर रूप प्रदान किया। इनके निबंध संग्रह व गद्यात्मक ग्रंथ बड़ी मात्रा में मिलते हैं। इनके द्वारा प्रकाशित साप्ताहिक 'नवशक्ति' का तमिल गद्य के विकास में बड़ा योग है।

पंडित मणि कदिरेसन चेट्टियार, नावलर सोमसुंदर भारतीयार, वेंगडस्वामी नाडार, आदि की शैली भी काफी उत्कृष्ट और विशिष्ट रही। लेकिन 'तमिल दादा' के नाम के विख्यात डाक्टर उ. वे. स्वामीनाथ अय्यर ने 'मीनाक्षी सुंदरम पिल्लै चरित्रम्', 'एन चरित्रम्' 'नान कंडदुम केट्टदुम' आदि कई ग्रंथों को सुंदर, मधुर, व बड़ी सरल शैली में लिखा है । इस सरल, जीवंत व सुंदर शैली को परवर्ती विद्वानों ने अपना लिया। का. सुब्रह्मणीयम् पिल्लै ने 'तमिल साहित्य का इतिहास' लिखा। डाक्टर रा. वि. सेतुपिल्लै ने एक ऐसी शैली को अपनाया जिससे गद्य शैली की लाक्षणिकता पर प्रकाश पड़ा ।

अनेक भाषाओं के ज्ञाता तो. पो. मीनाक्षी सुंदरनार, का. अप्पातुरै आदि ने सशक्त, सुस्पष्ट शैली अपनायी । आचार्य कलकी कृष्णामूर्ति का तमिल गद्य के विकास में बड़ा योगदान रहा । जब वे 'आनंदविकडन', 'कलकी' आदि साप्ताहिक पत्रिकाओं के संपादक थे तब उन्होंने हास्य लेख, उत्कृष्ट कहानियां, कई विशिष्ट ऐतिहासिक उपन्यास आदि लिखे। अर्थशास्त्र व राजनीति संबंधी गंभीर विषयों पर भी, ऐसी सरल और बोधगम्य भाषा में लिखा जो जन सामान्य भी सरलता से समझ सकें ।

श्री राजाजी ने कई कहानी संग्रह, निबंध, वैज्ञानिक लेख, विविध विषयों पर ग्रंथों को अपनी निजी व निराली शैली में लिखा है ।

तमिल के उपन्यास क्षेत्र में श्री मु. वरदराजनार ने युगांतरकारी परिवर्तन किये। इन्होंने शिष्ट शैली को अपनाकर उपन्यासों की रचना की । उपन्यास साहित्य को इन्होंने नया मोड़ दिया । अपने विचारों को पाठकों के लिए बोधगम्य बनाने में ये अपना सानी न रखते थे। तमिल भाषा एवं साहित्य का व्यापक ज्ञान इनकी सफलता में साथ देता रहा । इनकी बहुत सी पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। इनके अनुकरण में कु. राजवेलु ने कई उपन्यास लिखे।

श्री कि. वा. जगन्नादन ने सुंदर, सुबोध, परिमार्जित तमिल में कहानियां, निबंध और कई पुस्तकें लिखी हैं । ना. पार्थसारथी, मी. प. सोमसुंदरम, आदि तमिल विद्वानों व लेखकों ने कहानी, उपन्यास साहित्य के क्षेत्र में उल्लेखनीय सेवा की है। इन क्षेत्रों में श्री अखिलन का स्थान अपने ढंग का अनोखा है। इनकी रचनाओं की संख्या बहुत है ।

बी. एस. रामय्या ने सुंदर कहानियां और 'तेरीट्टी मगन' (कर्ण) जैसे सफल नाटक लिखे हैं । एस.डी. सुंदरम लिखित 'कवि का सपना' देशभक्ति प्रधान, भावपूर्ण, उत्तम कोटि का नाटक है । चित्रपट के लिए लिखी गयी इनकी कहानियां भी उल्लेखनीय हैं । पम्मल संबध मुदलियार ने कई नाटक लिखकर 'नाटकों के जन्मदाता' का श्रेय प्राप्त किया है।

जेगर्शिपियन, को. पी. मणिशेखरन, चाणडिलयन्, रा. की. रंगराजन आदि ने भी अपनी अलग शैली में साहित्य रचना की है। लक्ष्मी, अनुत्तमा, राजम कृष्णन, कोमगळ जैसी लेखिकाओं ने भी, चलती, प्रांजल शैली को अपनाया और अपनी सर्जनात्मक लेखनी द्वारा पर्याप्त ख्याति प्राप्त की ।

रसिकमणी टी. के. सी., एस. महराजन, आदि की निबंध शैली विचारानुकूल, गंभीर और सुंदर है । श्री मु. अरुणाचलम ने तमिल साहित्य के दसवीं शताब्दी से पंद्रहवी शताब्दी तक के इतिहास को अलग-अलग खंडों में विस्तृत गवेषणात्मक ग्रंथों के रूप में तैयार किया है और सरल, सुबोध शैली में होने के कारण तमिल गद्य साहित्य के विकास में इनका महत्वपूर्ण योगदान है। इसके अतिरिक्त इन्होंने अनेक ग्रंथों की रचना की है ।

मयिलै चीनी वेंगडस्वामी ने भी तमिल साहित्य के आलोचनात्मक क्षेत्र में अनेक ग्रंथों की रचना की । इतना तो कहा ही जा सकता है कि उपर्युक्त सभी लेखकों ने तमिल गद्य साहित्य के निर्माण में यथायोग्य सेवाएं दी हैं ।

आजकल कई लेखक बोलचाल की भाषा एवं शैली में साहित्य सृजन कर रहे हैं। पुदुमैपित्तन, कु. प.रा., आदि कहानीकार इस शैली के अगुआ कहे जा सकते हैं । शणमुख सुंदरम, जयकांतन आदि ने तो इसमें आशातीत सफलता भी प्राप्त की है। इनके उपन्यास और कहानियां उल्लेखनीय हैं जैसे ति. जानकी रामन, चिदमबर रघुनाथन, चिदमबर सुब्रह्मणि, न. पिच्चमूर्ति जैसे लेखक अपनी कृतियों से गद्य साहित्य को समृद्ध बना रहे हैं। श्री वासवन की शैली में गंभीरता और भावप्रवणता स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होती है ।

स्वर्गीय विद्वान अण्णा के भाषण व लेखन में अनुप्रासमयी आलंकारिक शब्दावली किलकारियां भरती रहेगी । डाक्टर करुणानिधि जैसे कई प्रतिभाशाली लेखक उनकी इस शैली का अनुकरण करके गद्य साहित्य की श्रीवृद्धि में लगे हैं ।

'सेंतमिष', 'तमिल पोषिल', 'सेंतमिष चेलवी' जैसे मासिक पत्रिकाओं में क्लिष्ट शब्दों से युक्त जो कठिन गद्य शैली का श्रीगणेश हुआ था वही गद्य आज सरल, स्पष्ट, बोधगम्य, सुंदर शैली के रूप में विकसित होता जा रहा है । 'कलैमगल', 'कलकी' जैसी पत्रिकाएं, 'तमिलनाडु', 'दिनमणी' जैसे दैनिकों का इस नवोत्थान में बड़ा हाथ है । 'नामरै' बोलचाल की भाषा में बनी प्रांजल शैली में अच्छी कहानियों का प्रकाशन कर रहा है। श्री वानमामलै, 'अरायुर्च्ची' (शोधन) के नाम से एक त्रैमासिक का प्रकाशन कर रहे हैं ।

व. वे. सु. अय्यर की 'बाल भारत', माधवय्या की 'पंचामृत', कवि भारती की 'इंडिया' आदि पत्रिकाओं ने गद्य के विकास में प्रशंसनीय सेवा की है ।

बाल साहित्य के क्षेत्र में किशोरोपयोगी सरल भाषा शैली में कई लेखकों ने साहित्य का सृजन किया है। इनमें ति. ज. रंगनाथन, अ.ळ. वल्लियप्पा, पूवण्णन आदि उल्लेखनीय हैं।

आजकल विज्ञान संबंधी ग्रंथ, निबंध साहित्य भी सरल, सुबोध तमिल में प्रकाशित होने लगे हैं । इस क्षेत्र में पे. न. अप्पुस्वामी अय्यर ने कई साल तक अथक परिश्रम किया है । पठनीय, सरल-सीधी, समृद्ध शैली में विज्ञान संबंधी विषयों पर पुस्तकें लिखने के प्रयत्न हो रहे हैं । इस दिशा में तमिल कलैकलंजियम् (एन्साइक्लोपीडिया), 'किशोरों के कलैकलंजियम्' ने बड़ी मदद पहुंचायी है।

इस संक्षिप्त लेख में तमिल गद्य साहित्य के विकास तथा विभिन्न विधाओं पर विस्तार से प्रकाश डालना संभव नहीं है । एकाध विधा का उल्लेख किया जा सकता है, फिर भी मैं यहां एक तथ्य का उल्लेख करना आवश्यक समझता हूं । आजकल यथासंभव अन्य भाषाओं के शब्दों का मिश्रण किये बिना, एक स्वस्थ, जीवंत शुद्ध प्रवाहमयी शैली को विकसित करने के लिए सभी उत्सुक हैं । यह भी उल्लेखनीय बात है कि पत्र-पत्रिकाएं इसमें अपना पूरा योग दे रही हैं ।

राष्ट्रकवि सुब्रह्मण्य भारती इस बात पर जोर देते थे कि हमारी नारियां, सीधी दृष्टि व सशक्त सीधी चाल रखें । उनकी कविताएं एवं गद्य रचनाएं उनके इस विचार को प्रतिबिंबित करती हैं। उनकी रचनाएं सरल, सीधी, सशक्त, मानव हृदय को अभिभूत करने योग्य मर्मस्पर्शी व सुलझे हुए विचारों से परिपूर्ण हैं। उनकी कविताओं के विश्लेषणात्मक अध्ययन के समान उनकी गद्य रचनाओं की विवेचनात्मक आलोचना नहीं हो रही है, इसे मानना पड़ेगा । शायद संस्कृत शब्दों की बहुलता इसका एक कारण हो मगर उनके लेखन काल को ध्यान में रखें तो उन्होंने ऐसी भाषा क्यों अपनायी थी, यह प्रश्न स्पष्ट हो जायेगा। उनका सारा ध्यान जनमानस तक अपने विचारों को पहुंचाना था । सशक्त, गहरी मगर सीधी, बोधगम्य, मर्मस्पर्शी भाषा में लिखना उनका एकमात्र उद्देश्य था । इसमें संदेह नहीं

कि वे अपने उद्देश्य में पूरी तरह सफल हुए । आप उनकी गद्य रचनाओं का अध्ययन करें तो आप वही सीधी, सशक्त शैली, सीधी व सुलझी दृष्टि, जीवंत भाषा और प्राणों के स्पंदन को पा सकते हैं । इस संकलन में उनके जो निबंध, कहानियां संकलित हैं, उन्हें पढ़ते वक्त आप पायेंगे कि बात को घुमा-फिराकर कहने के बजाय विचारों की अभिव्यक्ति बड़े सरल और आकर्षक ढंग से की गयी है, यहीं उनकी प्रतिभा पर मुग्ध हुए बिना नहीं रहा जा सकता । साथ ही हास्य रस और स्पष्टोक्ति, आदि भी अभिव्यंजित हुई है। उनका 'ज्ञानरथ' गद्य साहित्य की एक अनमोल रचना है ।

मैं महसूस करता हूं कि गद्य साहित्य के विकास में योगदान करने वाले अनेक लेखकों के नाम छूट गये हैं, लेकिन जिनका नाम लिया गया है, उनके योगदान पर भी मैं विस्तार से कुछ कह न पाया ।

इस संक्षिप्त लेख में श्रीलंका निवासी तमिलभाषी तथा मलेशिया आदि देशों में रहने वाले तमिलभाषियों ने तमिल गद्य साहित्य की जो सेवा की है, उसका भी उल्लेख करना पड़े तो यह लेख काफी लंबा हो जायेगा इसलिए उल्लेख नहीं किया गया । इन लोगों ने भी तमिल गद्य साहित्य के उत्थान में हाथ बंटाया है। बस, इन शब्दों के साथ अपना लेख समाप्त करता हूं ।

— पे. तूरन

सुब्रह्मण्य भारती (1882 - 1921)

संक्षिप्त जीवनी

कवि भारती को तमिल साहित्य के नवोत्थान और तमिलभाषियों में नव चेतना जागृत करने का श्रेय प्राप्त है। इनके पिताजी चिन्नस्वामी अय्यर को एट्टयापुरम जमींदारी में काफी प्रतिष्ठा प्राप्त थी । इसलिए एट्टयापुरम राजा के दरबारी तमिल पंडित व विद्वानों के निकट संपर्क में भारती का बाल्यकाल बीता तथा उनसे मिलने-जुलने का अवसर मिला था । इसलिए शैशव काल से ही काव्य रचना करके 'कवि भारती' की उपाधि प्राप्त की थी ।

भारती ने पहले तिरुनेलवेली के हाई स्कूल में शिक्षा पायी । चौदह वर्ष की आयु में ही उनका विवाह हो गया, मगर उसी समय उनके पिता की आर्थिक स्थिति बड़ी शोचनीय हो गयी थी । भारती के विवाह के एक साल के अंदर ही उनके पिता का स्वर्गवास हो गया और परिवार की स्थिति विषादमय हो उठी । भारती के जीवन में एक नया मोड़ आया, वे काशी गये और वहां अपनी फूफी के यहां रहकर दो साल तक अपनी पढ़ाई जारी रखी। यहीं उनको अंग्रेजी के साथ, हिंदी और संस्कृत पढ़ने का मौका मिला । कलकत्ता विश्वविद्यालय की प्रवेश परीक्षा में प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुए । इतना कह सकते हैं कि काशीवास ने ही उनके राष्ट्रकवि बनने में बड़ा योग दिया था । बंगाल में स्वतंत्रता की जो भावना सुलग रही थी उससे भारती इतने प्रभावित हो उठे कि दिल पर उसकी अमिट छाप रह गयी ।

1902 ई. में भारती एट्टयापुरम लौट आये और कुछ समय तक जमींदार की राजसभा में नौकरी की । मगर स्वच्छंदताप्रिय भारती का मन नौकरी में नहीं लगा । 1904 ई. में वे मदुरा गये और वहां एक स्कूल में तीन महीने तक तमिल पढ़ाते रहे। लेकिन अध्यापन में भी उनका मन न लगा। उसे भी छोड़ दिया ।

इसी वर्ष वे मद्रास गये और तमिल दैनिक पत्रिक 'स्वदेशमित्रन्' के सह संपादक बने। संपादन कार्य का दायित्व संभालते हुए भी उनहोंने 'चक्रवर्तिनी' नामक मासिक पत्रिका निकाली । साथ ही विरुवल्लिकेणी में मंडयम तिरुमलाचारी ने 'इंडिया' नामक जो साप्ताहिक शुरू किया था उसका भी संपादन करने लगे । अपने हृदय में धधकती देशभक्ति के आवेशपूर्ण विचारों को सारे तमिलनाडु में फैलाने के लिए 'इंडिया' भारती के लिए एक अच्छा साधन बन गया था ।

दिसंबर, 1907 ई. में सूरत के कांग्रेस अधिवेशन में भारती ने गरम दल वालों का समर्थन किया। तिलक जी के विचारों ने इनको इतना आकर्षित किया कि उनके प्रति इन्हें अगाध श्रद्धा हो गयी । तिलक जी की प्रशंसा में तथा नरम दल वालों की खिल्ली उड़ाते हुए उन्होंने कविताएं लिखीं ।

सूरत से मद्रास लौटते ही सरकारी कानून की परवाह किये बिना भारती अपनी लेखनी द्वारा क्रांति की अग्नि सुलगाने लगे । अंग्रेज सरकार ने प्रकाशक पर कानूनी कार्यवाही की तो मित्रों के आग्रह पर भारती गुप्त रूप से पांडिचेरी चले गये । भारती के वहां जाने के एक महीने बाद 'इंडिया' के ब्रिटिश भारत में आने पर रोक लगा दी तो विवश होकर पत्रिका को बंद करना पड़ा ।

सन् 1908 से सन् 1918 ई. तक भारती पांडिचेरी में रहे । वहां पर आर्थिक कठिनाइयों के कारण इनको असंख्य कष्ट झेलने पड़े । परिवार का गुजारा चलाना भी बड़ा कठिन रहा । लेकिन इस प्रवास काल में उन्होंने उत्तम साहित्य की रचना की । 'पांचाली शपथम्', 'कण्णन पाट्टु', 'कुयिल पाट्टु' आदि यहां पर लिखी अनूठी रचनाएं हैं। सामान्य रूप से इतना कहा जा सकता है कि पांडिचेरी में ही भारती की कवित्व शक्ति और गद्य शैली, मंजकर, पूर्ण रूप से विकसित हो उठी।

ऐसा नहीं समझना चाहिए कि भारती का प्रवास काल प्रत्येक दृष्टि से अत्यंत दुखद रहा। इसी प्रवास काल में उनको दो महान व्यक्तियों का संसर्ग प्राप्त हुआ और मित्रता हो गयी । 1910 ई. में अरविंद घोष पांडिचेरी आये । इसके पहले ही व. वे.सु. अय्यर वहां आ पहुंचे थे । लंदन शहर के इंडिया हाउस में रहने वाले एक युवक ने 1 जुलाई, 1909 को 'करजान विली' नामक अंग्रेज को गोली से उड़ा दिया और अपने आप पर गोली चलाकर मर गया । तुरंत अंग्रेज सरकार ने इंडिया हाउस से सावरकार, व.वे.सु. अय्यर आदि को कैद करने की कोशिश की । मगर अय्यर ने वेश बदल लिया और उनकी आंखों में धूल झोंक पांडिचेरी आ गये ।

श्री अरविंद, श्री अय्यर आदि की संगति भारती को मिली । छुटपन से लेकर भारती देवी पराशक्ति के प्रति बड़ी भक्ति रखते थे । अब देवी पराशक्ति पर कई अद्भुत गीतों की रचना की । कण्णन और मुरुहन (कार्त्तिकेय) उनके प्रिय आराध्य देव थे । उनका 'कण्णन पाट्टु' तमिल साहित्य में अप्रतिम स्थान रखता है । मुरुहन पर लिखे गीत भी महत्वपूर्ण हैं। 'सुर्दी निल्लादे-पो-पैये तुल्ली वरुगुदु वेल' (हे शत्रुता घेरे न खड़े रहो -शूलायुध कौंधता आ रहा है) इन पंक्तियों पर व. वे. सु. अय्यर इतना मुग्ध थे कि उनके शब्दों में इसका हर अक्षर लाखों रुपये पाने योग्य है ।

नवंबर 1918 ई. में प्रथम विश्व महायुद्ध का अंत हुआ । भारती पांडिचेरी छोड़कर ब्रिटिश इंडिया में लौट आये। तुरंत सरकार ने उन्हें कैद करके जेल में डाल दिया । मगर कतिपय मित्रों की सहायता पर रिहा कर दिये गये। तदंतर भारती अपने गांव कडैयम पहुंचे और कुछ समय तक वहीं रहे । फिर वहां से मद्रास आये और पूर्ववत 'स्वदेशमित्रन्' दैनिक

में काम करने लगे । इस समय तक भारती की सेहत काफी गिर चुकी थी । वे दुर्बल हो गये थे और बिल्कुल अजनबी व्यक्ति दिखायी देते थे ।

15 नवंबर, 1920 ई. से 'स्वदेशमित्रन्' में बहुधा हर दिन, 'रसतिरट्टू' 'विनोद तिरट्टू' 'टिप्पणियां' आदि स्तंभों में भारती लेखादि लिखने लगे । ये लेख ज्यादातर उदात्त विचारों से युक्त थे तथा आजादी की चेतना व जागरण को पाठकों के मन में भरने वाले थे ।

उस समय भारती तिरुवल्लिखेणी में रहते थे । वे अक्सर पार्थसारथी के मंदिर जाया करते थे और मंदिर के हाथी को बड़े प्रेम से फल और नारियल खिलाते । एक दिन उन्मत्त दशा में उस हाथी ने उनको पटक दिया । भारती के सिर और शरीर पर सख्त चोटें आयीं ।

कुछ दिनों में घाव भर गये, मगर इस घटना के उपरांत वे अधिक दिन जिंदा न रहे। उनका स्वास्थ्य गिरता गया । 11 सितंबर, 1921 ई. को उनका देहांत हो गया । युगद्रष्टा कवि भारती जिन्होंने अपनी प्रतिभाशाली लेखनी व अप्रतिम कवित्वशक्ति द्वारा तमिल भाषा में नयी चेतना एवं जागरण भर दिया था 38 वर्ष की आयु में ही चल बसे । हृदय में सुलगती उदात्त भावना की ज्वाला को, भावावेश को उनका शिथिल शरीर संभालने में असमर्थ रहा।

भारती की मृत्यु के उपरांत ही उनकी कविताओं की महत्ता प्रकाश में आयी । उन दिनों आजादी के लिए लड़ने वालों की हर सभा में उनके राष्ट्रीय गीत गूंज उठे । उनके देशभक्तिपूर्ण गीतों से जनता अनुप्राणित हो उठी । उनकी गद्य शैली में ऐसी नवीनता थी जैसे सीधे वार्तालाप हो रहा हो । उनके उदात्त विचारों में स्पष्टता थी । भारती ने गद्य क्षेत्र में नयी उद्‌भावनाओं को जन्म दिया ।

नारी-स्वातंत्र्य, समाज-सुधार व राजनीति में भारती के विचार काफी प्रगतिशील थे। भारती क्रांतिदर्शी थे । उनकी कविता, कहानी, लेख आदि रचनाओं में उनकी राष्ट्रीय भावना और क्रांति-विचार स्पष्टतया लक्षित हैं । जैसा कि भारती ने कहा है – हृदय में प्रकाश हो वाणी में प्रकाश होगा – इनके हृदयगत उज्ज्वल आलोकमय प्रकाश से उनकी समस्त रचनाओं को उद्‌भासित होते हम देखते हैं और महाकवि कहकर अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं।

प्रथम खंड - कहानियां

छठवां अंश

मीनांबाल वीणा बजाने में देवी सरस्वती के समान थी । जब कभी वह पुरसैवाक्कम में हमारे घर पर आती, छत वाले कमरे को उसके उपयोग के लिए खाली कर देते थे । चांदनी रातों में आठ बजे ही भोजन कर लिया जाता । नौ बजे से आधी रात तक वह अपने कमरे में वीणा बजाती रहती । कमरे से सटे बाहरी पंडाल में उसके पिताजी रावबहादुर सुंदरराजुलू नायुडू खाट पर लेटे, थोड़ी देर तक वीणावादन सुनते, फिर खर्राटे लेने लगते । मगर महाशय अपने खर्राटे से वीणा की मधुर ध्वनि को दबाते न थे । धीमे खर्राटे ही लेते । बाहरी आंगन में एक ओर मैं अकेले अपना ब्रह्मचारी-बिछौना बिछाये पड़ा रहता । वीणावादन समाप्त होने तक मेरी पलकें इमली की गोंद लगाने पर भी बंद न होती । मीनांबाल के कमरे में उसके साथ मेरी जो बहन रुक्मनु लेटा करती थी जल्दी ही सो जाती । नीचे मां, बड़े भाई, भाभी सब निद्रामग्न हो जाते । मेरी भाभी पेट में अन्न का निवाला पड़ते ही, हाथ धोते-धोते झपकियां लेने लगती । बीच-बीच में बच्चों के रोने की आवाजें आतीं । बड़े भाई रेवेन्यू बोर्ड के दफ्तर में नौकरी करते थे । उनको चार साल में एक बार दफ्तर में दस रुपये का, और घर में दो बच्चों का प्रमोशन मिलता था ।

वसन्त ऋतु । चांदनी रात । अर्धरात्रि की बेला । सारा पुरसैवाक्कम गहरी नींद में था। केवल दो प्राणियों की आंखों में नींद नहीं । एक तो मैं, दूसरी वह ।

मीना गंधर्व स्त्रियों की सी वीणा बजाती थी । देखने में भी अप्सरा सी लगती । उम्र का सोलहवां वर्ष था। अनावश्यक राम कहानी क्यों बढ़ाऊं ? कामदेव ने अपने तेज बाण से मेरे प्राण बींधकर उसके हाथों में सौंप दिये। ओह ! क्या कहूं ! उसका अलौकिक संगीत चाहे कितनी देर सुनते रहें दिल न अघाता । उसका मुखारविंद नित्य-नित्य नवविकसित सा लगता । उसके पिताजी रावबहादुर सुंदरराजुजू नायुडू मेरी मां के दूर के भाई लगते थे। तंजाऊर तथा अन्य कई जिलों में बहुत दिनों तक पुलिस इंसपेक्टर की हैसियत से सरकार की बड़ी सेवा की जिसके फलस्वरूप रावबहादुर की उपाधि प्राप्त की । स्वदेशी आंदोलन के शुरू होने से पहले ही वे नौकरी से अवकाश प्राप्त कर चुके थे । मेरे कहने का मतलब यह है कि असल में उनको प्राप्त उपाधि, स्वदेशी आंदोलन में भाग लेने कुछ नेताओं पर झूटमूठ की रिपोर्ट लिखकर पायी उपाधि नहीं थी, सचमुच कड़ी मेहनत का फल था । बचपन से ही उनकी यही इच्छा रही कि मीनांबाल की शादी मुझसे करा दें लेकिन

इसे पूरा करने में कई विघ्न पड़े । उनमें अधिकांश का कारण मैं था ।

सोलह वर्ष की आयु तक मैंने मद्रास क्रिस्चियन कालेज में शिक्षा पायी । वैदिक काल से लेकर आज तक भारत देश के ऋषि-मुनिगण निरे मूर्ख थे । अर्जुन, कालिदास, शंकराचार्य, शिवाजी, रामदास, कबीरदास, तथा उनके पहले व बाद के काल तक जो महान रहे, वे मूर्ख थे । भारत के निवासियों के हृदय में जिस भक्ति को पालते आ रहे थे वह सब बर्बरता पूर्ण मूढ़ भक्ति है । हेय और तुच्छ है । अंग्रेजों के ऐसे महान सत्य मेरे दिल में अंकित हो गये । मगर ईसाई पादरी एक विचित्र जीव थे। हिंदू धर्म और हिंदू संस्कृति के प्रति श्रद्धा रखना मूढ़ता है, अज्ञान है ऐसा निर्धारित करने के साथ साथ युवकों के मन में यह प्रभाव छोड़ देते हैं कि जिस ईसाई धर्म का गुणगान कर रहे हैं वह भी आखिर मूढ़ भक्ति ही है। धर्म संबंधी बातों को विस्तार से लिखकर मैं पाठकों को सिर दर्द पैदा करना नहीं चाहता। संक्षेप में इतना कहा जा सकता है कि मैंने अपने धर्म के आचार-विचारों से विरक्त होकर 'ज्ञान स्नान' नहीं किया; ब्रह्मसमाजी बन गया ।

कुछ दिनों के उपरांत पढ़ाई छोड़ दी । घर में किसी से बताये बिना कलकत्ता चला गया, और वहां ब्रह्मसमाजी बनने की शिक्षा ली । कुछ महीने उनकी पाठशाला में पढ़ता रहा । असल में मेरा उद्देश्य ब्रह्मसमाज का उपदेशक बनना था । कलकत्ते से पंजाब व हिंदुस्तान के अन्य प्रदेशों की यात्रा करता हुआ आखिर मद्रास आ पहुंचा । मेरे हिंदू धर्म को त्यागने की बात पर मेरी जाति वालों ने मुझे कई प्रकार के कष्ट दिये लेकिन मैं निराश न हुआ उलटे मेरी मानसिक दृढ़ता पहले से ज्यादा बढ़ती गयी । मेरे पिताजी – उनका नाम दुभाषी–रामचंद्र नायुडू था । वे केवल बाहरी वेशभूषा व रहन-सहन में आम लोगों के आचार-विचारों का अनुकरण करते थे, मगर दिल में ब्रह्मसमाज के प्रति श्रद्धा रखते थे इसलिए मुझे परमात्मा के प्रति भक्ति करते, आत्मविश्वास व श्रद्धा से उपनिषदों का अध्ययन करते देख मन ही मन आनंदित हुए । मगर प्रकट में ऐसे पेश आये मानो मुझ पर नाराज हों । मेरे रिश्तेदारों की बातों में आकर मुझे कोई कष्ट भी न दिया । घर में ऐसा प्रबंध कर रखा था कि मुझे पहले से अधिक सुविधाएं मिलें । मगर न जाने क्यों बड़े भाई ने मेरे प्रति बेहद घृणा प्रदर्शित की । मैं पंजाबियों जैसा साफा बांध लेता था। पंद्रह रुपये वेतन पाने वाले गुमाश्ताओं के कुंबकोणम् ढंग का साफा, जिसमें न सौंदर्य हो, न गंभीरता, मैं नहीं पहना करता । इस पर भी भैया नाराज हो जाते । "राजपुत्तुडु वोडु दोंगा विधवा ! ललतो महा आंडबरमुळ पगड़ी वीडिकी" (बड़ा राजपूत ठहरा ! साला ! ठाट की पगड़ी देखो सर पर !) ऐसी गालियां दिया करते । इसी बीच एक दिन वायुरोग के कारण मेरे पिताजी की अचानक मृत्यु हो गयी । उनका अंतिम संस्कार, ब्रह्मसमाजी ढंग से कराने की मेरी इच्छा थी । मेरे भाई हिंदू धर्म के आचार अनुष्ठानों का अनुकरण करना चाहते थे। इस पर गरमागरम विवाद व चर्चाएं हुईं। लाख मध्यस्थतों और बीचबचाव के बाद श्मशान में उसने अपनी इच्छानुसार अंत्येष्टि क्रियाएं कीं और बाद में मैंने अपने सिद्धांतों के अनुसार एक ब्रह्मसमाजी गुरु की मदद लेकर विधिवत् क्रियाएं संपन्न कीं। इन सब

बातों ने मुझे अपने मामाजी रावबहादुर सुंदरराजुलू नायुडू की दृष्टि में गिरा दिया । परिणामस्वरूप विवाह होने में विलंब होता रहा । लेकिन वे दिल से यही चाहते थे कि किसी तरह मेरा सुधार करके, अपनी बेटी की शादी मुझ से करा दें ।

वसंत ऋतु । पूर्णिमा का चांद । अर्धरात्रि की बेला । सारा पुरसैवाक्कम निद्रामग्न था । केवल दो प्राणी जागृत थे । एक मैं, दूसरी मीना । शीतल मंद बयार चल रही थी। छत पर मीना के कमरे से वीणा की मधुर ध्वनि आ रही थी । लेकिन हमेशा की तरह खर्राटे की आवाज सुनाई न पड़ी । मामाजी शहर में नहीं थे । गांव गये हुए थे । मैं तो आंगन में अपनी खाट पर बैठा था । मेरे दिल में दो ज्वालामुखी परस्पर द्वंद्व युद्ध कर रहे थे । इनमें एक था प्रेम, दूसरा वह जो आपको बाद में मालूम होगा । वीणा वादन एकाएक रुक गया । थोड़ी देर में मुझे लगा कि कोई मेरे पीछे आ खड़ा है । मुड़कर देखा तो मीना खड़ी थी ।

पहली बार हमारा एकांत मिलन हो रहा था, इसलिए हमारे प्रेम संलाप का लंबा-चौड़ा वर्णन होगा, पाठक ऐसी आशा न करें । कई बार हम एकांत में मिले थे । मीना खाट पर आ बैठी । मैंने धीरे से कहा "मीना ! आज मैं तुमसे एक बात कहना चाहता हूं ।"

वह बोली, "मैं जानती हूं ।"

"क्या है ? बताओ तो सही ।"

"आप ब्रह्मचर्य व्रत धारण करने वाले हैं ?"

" क्यों किसलिए ? तुमसे किसने कहा ?"

उसने कहा "वंदेमातरम् ।"

मीना की प्रखर बुद्धि से मैं परिचित था । इसलिए उसके मुंह से ऐसी बातें सुनकर आश्चर्य न हुआ । मैंने कहा - "हां मीना ! अब ब्रह्मचारियों को ही देश की रक्षा का भार उठाना है। इस महान देश का अब पतन हो गया है । सर्वोच्च हिमालय पर्वतमाला की जगह पर कंटीली झाड़ियों और विषैले जंतुओं से भरा घोर वनप्रदेश छा गया सा लगता है। लगता है, अर्जुन के भव्य राजमहल में चमगादड़ों का राज चल रहा है । ब्रह्मचारी ही इसका उद्धार कर सकेंगे। बोबली राजा का पुत्र या राजा सर रामस्वामी मुदलियार का बेटा न होकर हम जैसे साधारण परिवार के लोग शादी कर लें तो अकालपीड़ित इस देश में दम घुट जायेगा । 'गौरैया के सिर पर ताड़ का फल' की तरह, इन गीदडों के झुंड के एक युवक के सिर पर परिवार का बोझ डालते वक्त उसका प्राण मुंह को आ जाता है। उसकी छोटी-मोटी अभिलाषाओं एवं लक्ष्यों को पूरा करना भी उसके लिए भगीरथ प्रयत्न सा हो जाता है । ऐसी हालत में देशसेवा का कार्य और कर्त्तव्य वे कैसे निभायेंगे ? उसकी चिंता कैसे करेंगे ? हमें ब्रह्मचारी चाहिए। आत्मज्ञानी लोग चाहिए । सांसारिक सुख भोगों की चाह न रखनेवाले निःस्वार्थ सेवी चाहिए । यह स्वदेशी आंदोलन कोई लौकिक कार्य नहीं।

यह एक पुनीत धर्म है । जो इसकी दीक्षा लेता है उसमें, कर्मयोगी की निस्पृहता, तेजस, वीर्य तथा पौरुष आदि विशिष्ट गुणों की आवश्यकता है । चाहता हूं, मैं भी उस व्रत की

दीक्षा लूं, लेकिन ...."

"लेकिन बीच में मैं शनीचर सी आ पड़ी हूं – है न ?"

"देखा न ? कैसी बातें करती हो तुम ! मेरी बात पर जरा कान तो धरो न ? अपने इस नये संकल्प के पहले ही मैं अपना प्राण तुम पर न्योछावर कर चुका हूं । अब तो मेरे लिए एक और कर्त्तव्य है। इस पर तुम्हारी आज्ञा की प्रतीक्षा है ।"

वह कुछ कहना चाहती थी कि इतने में नीचे द्वार पर एक गाड़ी के रुकने की आवाज आयी ।

"पिताजी ! आ गये । अच्छा मैं चलती हूं।" एक परिरंभन व चुंबन के बाद वह चली गयी ।

खुर्राट नायुड़ु ने दरवाजा खटखटाया, और नीचे लेटे खर्राटेवालों को जगाकर ऊपर आकर यथास्थान लेट गये और आधे घंटे में अपने खर्राटे चालू कर दिये ।

दो प्राणी उस दिन रात भर जागते रहे । एक मैं, दूसरी वह ।

2

पिछले खंड के अंत में लिखी घटना के उपरांत कुछ महीने बीत गये । इसी बीच हमारे जीवन में कई एक परिवर्तन हो गये । 'वंदेमातरम्' का मैं अनुयायी हूं, यह जानते ही रावबहादुर ने अपनी बेटी की शादी मुझसे करने का इरादा छोड़ दिया । गत कुछ महीने से अपने स्थायी निवास तंजाऊर से पुरसैवाक्कम आना बिलकुल आना बंद कर दिया था। यह भी समाचार मिला कि वे मीना के लिए कहीं वर ढूढ़ रहे हैं । मीना का कोई पत्र न आया। सोचा.... अब उसे मेरी याद बिलकुल नहीं आती होगी । कहा जाता है कि नारी प्रवंचना का मूर्तिवान रूप है । क्या यह सच है ? "पेण एनप्पडुव केणमो ! उलमिरैवुडैय वल्ल, ओरायिर मनत्तावाकूम" (नारी क्या है, जानते हैं ! .... पूर्ण समर्पित मन की नहीं, हजारों मन की है।) 'जीवकचिंतामणि' (तमिल काव्य) में इसे पढ़ते समय लगा, लेखक को मीना जैसी नारी का परिचय नहीं है और शायद न ही उसके प्रेम का पात्र बनने का सौभाग्य मिला। लेकिन अब सोचा – क्या उस लेखक के वचन सिद्ध हो गये ? यौवन की नासमझी के कारण मैंने उस विख्यात लेखक के विचारों को गलत मान लिया होगा ।

हाय रे मूर्ख ! इस बात पर तुम क्यों इतने हताश हो रहे हो ? तुम तो आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करने के विचार को पालते आ रहे हो । मीना यदि किसी दूसरे से विवाह कर लेगी तो तुम्हारा मार्ग सुगम हो जायेगा । इस जीवन में तुम किसी और नारी से प्रेम करने वाले नहीं हो । केवल यही तुम्हारी मार्ग में बाधा बन रही है। यदि वह दूसरे की पत्नी बन जाती है तो क्या हर्ज है? तुम्हारा व्रत निर्विघ्न पूर्ण हो जायेगा । भगवान तुम पर ऐसी कृपा कर रहे हैं। इस पर तुम दुखी क्यों होते हो ? – कभी कभी मेरा मन इस प्रकार मुझे समझाता।

साथ ही एक और विचार आता – नहीं, वह मुझे भूली न होगी । मामाजी की बातें मानकर वह किसी दूसरे से शादी नहीं करेगी । वह तो मेरे प्राणों में समा चुकी है । मेरे दिल में प्रज्ज्वलित धर्म में वह भी एकाकार हो गयी है । उस धर्म के पालन करने में विघ्न बनकर उपस्थित होने के भय से उसने मुझे पत्र न लिखा होगा । हाय री मीना ! क्या मैं तुम्हें नहीं जानता ? चाहे जो भी हो, क्या तुम मुझे भूल सकोगी ? तुम्हारी आंखों ने कितनी बार कहा है – मैं तुम्हें कभी न भूलूंगी । ओह ! वे आंखें ! वे आंखें अब भी मेरे सामने आ जाती है ! क्या वे आंखें झूठ बोलतीं ?

फिर मन कहता – हाय-हाय! कैसा वैराग्य है तुम्हारा ! कैसी भक्ति है तुम्हारी ! कैसा धर्म, कैसी श्रद्धा है ? वाह ! वाह ! आज देश का उद्धार करने के लिए तुम जैसे पुत्र ही चाहिए न ? यह तो भीष्म का देश है न ? अब तुम जैसे लोग ही इस मिट्टी को उज्ज्वल बना रहे हैं ? छिः छिः छिः ! कुतिया मन ! अमृत को त्यागकर हड्डी के पीछे पड़ गया ? लोकोद्धार बड़ी वस्तु है, या यौन सुख ? धर्म की सेवा बड़ी है या नारी की सेवा ? बता दो, तुम किसको ग्रहण करने वाले हो ?

एक और विचार आया – जैसे भी हो उसका निश्चय मालूम हो गया, वही मुझे बड़ी शक्ति देगा। 'तुम धर्म का पालन करो। मेरे लिए धर्म का त्याग मत करना । आजीवन तुम्हीं को अपना आराध्य मानकर, व्रत पालन करती रहूंगी । स्वर्ग में हमारा साथ होगा।' ऐसा वह वचन देती तो यह जीवन भारी न रहता ।

उसकी शादी किसी और से हो गयी, यदि ऐसा समाचार मिलता तो निश्चिंत हो जाता। फिर तो कोई ऐहिक चिंता ही न होती, दिलोजान से धर्मसेवा में लग जाता ।

उसका प्यार ? नारी के लिए प्यार जैसा कुछ होता है ? प्रवंचना और लोभ, इन दोनों को एकत्रित करके ब्रह्मा ने नारी की सृष्टि की है ।

इस तरह हजारों प्रकार की चिंताएं बारी-बारी से उठकर मुझे व्याकुल करने लगीं । जिसमें मानसिक दृढ़ता नहीं उसका चंचल चित्त आलोड़ित सागर के जैसा है । पाठकगण पल भर तटस्थ रहकर अपने दिल में हलचल मचाते मानसिक संघर्ष और उथल-पुथल पर ध्यान देंगे तो उन्हें बड़ा विस्मय होगा । मानव जवीन में इतने उलटफेर और आश्चर्य क्यों घटित होते हैं ?

"मरप्पुम मिनैप्पुमाय मिंद्र वंच माया मनत्ताल वळरंततु तोपि" (री सखी ! स्मृति एवं विस्मृति से भरी वंचक मायावी मन से अंकुरित हुई)।

अचानक एक दिन मीना का पत्र मिला । उससे यहां दे रहा हूं । आप कल्पना कर सकते हैं कि इसे पढ़ते वक्त मेरा मन कितना दुखी हुआ होगा ।

ओम्

तंजाऊर

मेरे सर्वस्व,

यह पत्र लिखते समय मेरा हृदय घबरा रहा है । क्या लिखूं, समझ में नहीं आता।

हाय ! यही मेरी आखिरी चिट्ठी है । मैं आपके दर्शन फिर कभी न कर पाऊंगी ।

पिताजी अगले महीने इस शहर में आये नये पुलिस इंस्पेक्टर से मेरी शादी कराने अर्थात् मेरी बलि देने का निश्चय कर चुके हैं । उसका नाम मन्नार है । विवाह की तैयारियां हो रही हैं । तुम्हारा नाम सुनते ही शिकारी कुत्ते के समान पिल पड़ते हैं और ऐसी-ऐसी भद्दी गालियां देते है कि सुना नहीं जाता । मैं भाग जाऊंगी, यह सोचकर पहरा बिठा दिया हैं । शायद यह खबर पाकर तुम कहीं यहां न आ जाओ, तुम्हें घर पर न आने देने के विचार से पिताजी और मन्नार ने निंदनीय प्रबंध कर रखे हैं । उसकी आंखें तो पिताजी की संपत्ति पर लगी हैं । इसीलिए मुझसे विवाह करना चाहता है । मैंने कहलवा भेजा है कि, मुझे उसके प्रति बहुत नफरत है, ऐसी हालत में मुझसे जबरदस्ती विवाह कर ले तो जीवन भर उसे दुख भोगना पड़ेगा, सुख नहीं । इस पर उस पशु ने उत्तर भेजा कि मुझे उसके दिल से कोई मतलब नहीं । बाद में उसकी मरम्मत कर लूंगा । पहले वह रुपया मेरे हाथ लग जाये फिर वह जाये भाड़ में, चाहे तो उस जेल के मेहमान के साथ समुद्र में डूब मरे ।

पिछले कई दिनों से मेरी नींद हराम हो गयी है । एक तो रात भर सो न पायी, करवटें बदलती रही । तब लगा कोई सपना हो । जागृत अवस्था में सपना आता कैसे ? न वह सपना था, न सत्य । हां, आंखों के सामने कुछ दृश्यमान था । अति भयंकर रौद्राकार रूप, रक्त सी लाल-लाल आंखें, काले बादल सा शरीर, गले पर नरमुंड माला, हाथ में त्रिशूल लिये कालिका देवी उसमें प्रकट हुई । मैं मारे भय के कांप उठी। 'माताजी ! मेरी रक्षा कीजिये' ऐसा कहते हुए प्रणाम किया । तुरंत देवी का रूप एकदम सुंदर रूप में बदल गया। उस अलौकिक सौंदर्य का वर्णन कैसे करूं ? देवी के सिर के चारों तरफ कोटि सूर्य प्रकाश सा तेजोमंडल घिरा हुआ था। सुविशाल नयनों से करुणा फूट रही थी । देवी ने मुझे अभय प्रदान करते हुए कहा – 'बेटी ! तुम्हारे अत्तान (बुआ का बेटा) गोविंदराजन को अपनी सेवा में लेने वाली हूं । इस जन्म में तुम उसे प्राप्त नहीं कर सकती हो, न तुम पराये की पत्नी बनोगी । इस संसार में अब तुम्हें कोई सुख नहीं । तुम्हारे घर के पिछवाड़े में, उत्तर-पश्चिम कोने पर, अकेले एक स्थान में एक जड़ी बूटी है । कल सवेरे स्नान करके, पूजा से निवृत्त होते ही उस बूटी के दो पत्तों को उठाकर खा लेना । भूलना मत !' इतना कहकर देवी पराशक्ति अदृश्य हो गयी ।

सवेरे उठते ही मैं उस जड़ी बूटी को देखने गयी । आकाश से एक कौआ उतर आया। उसने उस पत्ते पर चोंच मारी, तुरंत छटपटाकर मर गया । यह देखते ही मैं देवी की आज्ञा को समझ गयी । आज सवेरे दस बजे उस जड़ी बूटी के दो पत्ते खाकर मैं स्वर्ग सिधारूंगी। वहां भी तुम्हारी प्रतीक्षा करती चिरकन्या बनी रहूंगी । तुम अपना धर्म और कर्तव्य पूरा करो । माता तुम पर तृप्त होते ही तुम्हें मेरे पास पहुंचा देंगी । अच्छा । अब विदा लेती हूं । राजा ! राजा ! मुझे भूलना मत । वंदेमातरम् !

यह पत्र पढ़ते ही मैं मूर्च्छित होकर गिर पड़ा ।

3

मीना का अंतिम पत्र मिले अब दो साल गुजर गये हैं । इसी बीच मुझ पर जो कुछ बीता उन अनुभवों को विस्तार से सुनाने लगूं तो पुराण की पोथी बन जायेगी । इसलिए संक्षिप्त रूप से बताता हूं । यह पत्र पाकर बड़े दुख के साथ मैंने घर छोड़ दिया और काषाय धारण करके साधु बना उत्तर भारत में घूमता रहा । 'वंदेमातरम्' धर्म को कभी न भूला। लेकिन मैं ऐसे कार्यों में भी न लगा कि सरकार मुझे कैद करके जेल में डाल दे । जनता में एकता व संगठन हो तो स्वतंत्रता स्वतः ही प्राप्त हो जायेगी, ऐसा मैं मानता था । कारण की उपेक्षा करके फल पर नाक भौंहें सिकोड़ने का मेरा मन न रहा । इधर-उधर भाषण दिया करता । जिससे कभी-कभी पुलिस मेरा पीछा करती । इसके कारण जनता से मिल-जुलकर उनकी भलाई करने में बाधाएं उपस्थित हुईं । मेरे भाषण मेरे आदर्श को पूरा करने के अनुकूल न होकर प्रतिकूल रह गये । इसके अलावा अपने भाषणों पर जनता को मुग्ध होते, व अन्य लोगों से ज्यादा मेरा आदर-सत्कार करते देख मैं गर्वित हो उठा।

"प्रकृतिजन्य गुणों से कार्य, कर्म होते हैं ।" 'मैं करता हूं' ऐसा मूर्ख लोग मानते हैं', भागवतगीता के इस वाक्य का अक्सर मनन करता था । मुझे इसका भय रहा कि कहीं यह गर्व, दिन-ब-दिन बढ़ते मुझे दबा न दे और मैं किसी काम का न रहूं । किसी के आदर-सत्कार, व भेंट-पुरस्कार की प्रतीक्षा न करके मौन सेवा करने के लिए ही देवी ने मुझे जिंदा रखा है, इसका बोध होते ही मैंने भाषण देना छोड़ दिया । इसके उपरांत पुलिस के सिपाहियों ने भी मेरी आवभगत करनी छोड़ दी । पैदल यात्रा करता हुआ, आखिर लाहौर पहुंचा ।

लाहौर में लाला लाजपतराय जैसे लोगों से मिलने को मेरा मन उत्कंठित हो उठा । मेरी उनसे भेंट हुई । उन्हें मुझ पर विश्वास हुआ । उन्होंने कहा, "आजकल कोशल प्रदेश में भारी अकाल पड़ा है। उन अकालपीड़ित लोगों में खाना व कपड़ा बांटने के इरादे से चंदा वसूल कर रहा हूं । कई नौजवान मुझसे द्रव्य लेकर उन दुर्भिक्ष प्रदेशों में रहकर लोगों की सेवा कर रहे हैं ।" अंत में उन्होंने पूछा, "क्या तुम भी वहां जाकर सेवा कर सकते हो ?"

हाय ! जहां पर श्री राम ने राज किया था वह पुनीत भूमि ! वाल्मीकि ने जिस रामराज्य का गुणगान किया था वह धरती ! हाय ! उस धरती के लोग भूखे-नंगे, तड़प रहे हैं। उनकी सेवार्थ मैं जाऊं, ऐसा पूछने की क्या बात है ? वे तो मेरे लिए पूज्य हैं । उनकी सेवा न करनी होती तो व्यर्थ का यह बोझा क्यों ढोता ? लालाजी की अनुमति लेकर वहां गया और कुछ समय तक सेवा कार्य में लगा रहा । वहां पर जो जो देखा था उसके बारे में लिखूं ? अच्छा लिखता हूं - ध्यान दीजिये । देवलोक के बारे में सुना है ? अच्छा ! अगर देवलोक नरकलोक में बदल जाता तो कैसा लगता ? वैसा था श्री रामचंद्र जी का वह राज्य। वहां देखे भयंकर दृश्यों का वर्णन आपसे क्या करूं ? उस पुण्य भूमि की निंदा करने से शायद थोड़ा सा पाप लग जाता। इस पाप के अलावा और क्या मिलने वाला है ? तुमसे मेरी मातभूमि

को क्या लाभ है ? उठकर आओ ! देखें कितने दिन ऐसे ऊंघते पड़े रहोगे ? हाय रे अधम जातिवालो! ... अधिक क्या कहना ? एक-दो महीने के बाद लालाजी ने अकाल निवारण कार्य समाप्त करने की आज्ञा भेज दी ।

कोशल प्रदेश में अकाल निवारण कार्य करते वक्त चिरकाल से मेरे दिल में जो विचार जड़ पकड़ चुका था, अब जोर पकड़ने लगा । हमारे देश में उच्च वर्ग कहे जाने वाले नीच जातिवालों के सुख-दुखों के प्रति कितने विमुख और लापरवाह हैं, यह देखकर मेरा मन निराश हुआ । दक्षिण भारत के समान उत्तर भारत में भी निम्न वर्ग के लोग ज्यादातर खेतिहर हैं । कृषि कर्म में लगे ये लोग शास्त्र की दृष्टि से वैश्य हैं लेकिन इनमें से कई लोगों को गोमांस खाने जैसे अनाचारों के आदी होने के कारण हिंदू जाति निम्न मानती है । हिंदू धर्म एवं संस्कृति में गोमाता आदरणीय हैं । हिंदू संस्कृति एवं सभ्यता खेती-बाड़ी पर आधारित है। गाय, बैल, कृषि कर्म के प्राणी है । इसलिए प्राचीन काल से लेकर हिंदुओं ने गोमांस का वर्जन कर दिया । एक छोटे से अंशमात्र को उसका वर्जन न करते देख बहुसंख्यक लोगों ने उनको अपने से अलग और नीचा माना है। यह तो बिलकुल न्याय संगत है। लेकिन अकाल महामारी जैसे घातक शत्रुओं का सामना करते वक्त ऊंच-नीच का भेद दिखाना हमारी मूर्खता है। नीच जाति वालों की हमने बड़ी उपेक्षा करके अवनति करा दी है। उसका फल अब भोग रहे हैं। "हृदयमरिन्दिड चेय्यद कर्माडल्ल इगळंद पिरिंदु पोमो" (जानबूझकर किये कर्म का फल छूटता कैसे ?)

"मुर्पहल चेय्यिन पिर्पहल विळैयुम" (जैसी करनी वैसी भरनी)। हमने चमार और अछूतों के प्रति जो व्यवहार किया, वही विदेशों में हमारी प्रति हो रहा है । हमारे शृंगेरी शंकराचार्य जी और वानमामले जीयर स्वामीजी यदि नेटाल, ट्रांसवाल आदि देशों में जाते तो उन्हें शहर के बाहर नीच जाति वालों की बस्तियों में रहना होता। साधारण लोग जिस रास्ते पर चलते वहां वे चल न पायेंगे। अलग हटकर चलना होगा। पालकी, गाड़ी की कल्पना तक नहीं कर सकते। संक्षेप में कहा जाये तो हमने अपने ही एक वर्ग के लोगों को नीच माना था। अब तो दुनिया, अन्य देशवालों की अपेक्षा हमारे देशवालों को तुच्छ व नीच समझ रही है। हमने अपने ही एक वर्ग को अछूत घोषित करके परे हटा दिया, अब तो वेदमार्गी तथा मुसलमान ऐसे दो हिस्सों में बंटे हमारी देश के समस्त लोगों को दुनिया अछूत समझ रही है। दुनिया की हर जाति में कई वर्ग हैं । मगर वर्ग-भेद की भावना जड़ पकड़कर किसी कौम को दुर्बल कर दे तो, उस बात को लेकर हमें नीचा दिखाना विदेशियों के लिए असान हो जाता है। आपसी फूट तीसरे के लिए लाभदायक सिद्ध होती है।

1200 साल पहले जब मुसलमानों ने पंजाब में प्रवेश किया था तब हम उच्च वर्ग वालों के अत्याचारों से पीड़ित निम्न जाति वालों ने डंका बजाकर उनका स्वागत किया और उनसे जा मिले, ऐसा इतिहास बताता है। उस वक्त हमारी कौम को जो रोग लग गया था उससे अब तक मुक्त नहीं हुए। अकाल, महामारी इत्यादि में ज्यादातर निम्नवर्ग वाले ही मर मिटते हैं। इस बात पर उच्चवर्ग वाले ध्यान नहीं देते। इसके विपरीत दूर देश से आये अंग्रेज पादरी लोग अकाल-पीड़ित

कंकालों की कई तरह की मदद करते हैं, साथ ही सैकड़ों लोगों को, खासकर अनाथ बच्चों को अपने ईसाई धर्म की दीक्षा दिला देते हैं। हिंदुओं की संख्या प्रतिवर्ष अति भयंकर रूप से कम होती जा रही है। महाधिपति और महंत लोग अपनी तोंद फुलाना, ज्ञान की वृद्धि मानकर आनंदित होते जा रहे हैं। हिंदू लोग ! हिंदू जनता ! हाय ! हमारा खून, हमारा रक्त मांस, हमारी हड्डियां, हमारे प्राण, हिंदू जाति के, हिंदुस्तान के लोग कंकाल बने, भूखे-प्यासे मरते जा रहे हैं, कोई पूछता नहीं।

गोमांस खाने की आदत से उन्हें मुक्त करके साफ-सुथरा रहना सिखाकर उनको अपने समाज में मिलजुलकर रहने देना चाहिए। उन लोगों को शिक्षा-दीक्षा देकर, धर्म एवं भक्ति का मर्म समझाकर आश्रय देना चाहिए । नहीं तो वे सब हमारे विपक्षी और विरोधी बन जायेंगे। इस दिशा में अपनी सीमित शक्ति भर जहां तक हो सके कोशिश करने की इच्छा मेरे दिल में अंकुरित हो उठी । इस बीच मालूम हुआ कि बंगाल में अश्विनी कुमार दत्त नाम के कोई देशभक्त हैं, और वे उस प्रदेश में 'नामशूद्र' (नाम के वास्ते शूद्र) कहे जाने वाले निम्न जाति वालों को हिंदू समाज के अंतर्गत स्थान दिलाकर उनकी उन्नति के लिए पूरी कोशिश कर रहे हैं । मेरे दिल में उनसे मिलने की इच्छा हुई।

4

कलकत्ते में कुछ दिन ठहरने के बाद मैं पारिसाल पहुंचा। वहां जाकर उनका पता ढूंढ़ता हुआ आखिर अश्विनी कुमार दत्त के यहां जा पहुंचा । द्वार पर कोई बंगाली बाबू खड़े थे । उनसे पूछा, "अश्विनी बाबू जी यहां पर हैं ?" उत्तर मिला, "नहीं, कल ही काशी गये हैं ।" 'हाय' कहकर काठ मारा सा रह गया । मेरा काषाय वस्त्र देखकर वे बाबूजी मुझे घर में ले गये और कुछ खिलाने-पिलाने के बाद मेरा परिचय चाहा - कहां से आया हूं ... इत्यादि। मैंने अपना सारा हाल सुनाकर, अपने आने का उद्देश्य भी बताया। "देखिये बाबूजी, हममें से एक छठवां हिस्सा जो लोग हैं, उन्हें हम अछूत बनाये रखें तो क्या भगवान हमें सद्गति देंगे ?" मेरे मुंह से ये शब्द निकलते ही उस बाबूजी के मुंह पर उदासी छा गयी। आंखें सजल हुईं, लगा रो पड़ेंगे । सोचा, अछूतों की दयनीय दशा पर इतने दुखी हो रहे हैं, बोला, "आप जैसे दिलवाले और आदमी भी हो जायें तो इस देश का उद्धार हो जायेगा ।"

"स्वामीजी ! जैसा आप सोच रहे हैं, वैसा दया एवं करुणापूर्ण हृदय, देवी ने अब तक मुझे प्रदान नहीं किया । नीच जाति वालों का उद्धार करने की मुझमें भी थोड़ी बहुत श्रद्धा है । अश्विनी बाबू के साथ मैंने भी उनकी थोड़ी सेवा की है । लेकिन हमारे छठवें हिस्से वाले लोगों की ऐसी दुर्गति हो रही है, यही मेरी उदासी का कारण नहीं है । अभी आप के मुंह से जो वाक्य निकला, उसको अभी कुछ दिन पहले यहां जो मंदराज महिला आयी थीं, उनके मुंह से बार-बार सुना था (मंदराज महिला अर्थात् मद्रासी स्त्री । उत्तर भारत वाले मद्रास का उच्चारण मंदराज करते हैं)। आपकी बातें सुनते ही मुझे उस महिला की याद आ गयी और उनकी स्थिति पर दुख हुआ। ओह ! कैसा गुण ! कैसा रूप ! इतनी छोटी उम्र में ही देश के प्रति कैसी श्रद्धा व भक्ति !" इतना कहकर वे एकाएक मौन हो गये। फिर एक-दो बार मेरी ओर

गौर से देखा । उन्होंने पहले ही बताया था कि उनका नाम सतीश बाबू है ।

"सतीश बाबू ! ऐसे क्यों देख रहे हैं ?" मैंने पूछा ।

वे बोले, "स्वामी जी ! क्षमा कीजिये । आप तो संन्यासी हैं। मैं नहीं जानता कि आप किस प्रदेश के हैं, फिर भी आपके चेहरे को देखकर लगता है कि यह चेहरा उस युवती की सूरत से मिलता-जुलता सा है। मैं यह नहीं कहता कि आप दोनों का चेहरा एक सा है। मगर न जाने क्यों, आपके मुखड़े पर उसका रूप झलकता है ।"

उनके 'मद्रासी युवती' ऐसा कहते ही मेरा दिल अधीर हो उठा, बाद में उन्होंने जो कुछ सुनाया था, उसे सुनते ही मेरी व्याकुलता की सीमा न रही। मैंने काषाय धारण किया था। बहुत दिनों से संन्यासी का जीवन बिता रहा था। ओह ! गोविंदा ! वेश-भूषा में क्या रखा है ?

मीना ! .... ओह ! उसको मरे दो साल से ज्यादा हो चुके।.... मेरी प्रिया ने कितना कष्ट उठाकर प्राण त्यागा था ? .... पल भर में मन के भूत ने उथल-पुथल मचा दी। हजारों कल्पनाएं तांडव नृत्य करने लगीं।

"सतीश बाबू ! मैं भी मद्रासी हूं। आप के द्वारा बतायी गयी युवती के बारे में बात सुनते ही मुझे अपने परिचित एक बंधु की याद आ गयी। कहिये ! वह कौन है ? क्या नाम है ? अब कहां रहती है ? यहां किस उद्देश्य से आयी थी ? उसकी स्थिति पर आपको क्यों दुख हो रहा है ? उसे अब कौन सा कष्ट है । जरा मुझे सारी बातें विस्तार से बताइयेगा।"

सतीश चंद्र बाबू ने कहना शुरू किया। उनका हर वाक्य मेरे हृदय पर अग्नि में तपाये लोहे के तीर सा लगा। उस वक्त मुझ पर जो कुछ बीती उसका वर्णन करता जाऊं तो पाठक को नीरस लगेगा, इस डर से उन्होंने जो कुछ कहा वही सुनाता हूं। मेरे मानसिक उद्वेलन की आप कल्पना कर सकते हैं। सतीश बाबू ने कहा, "वह युवती तंजौर की थी। उसका नाम मुझे मालूम नहीं । हम लोग उसको 'दीन माता' कहा करते थे। केवल अश्विनी बाबू को उसका असली नाम मालूम है। मगर उन्होंने उस देवी की कहानी हमें सुनायी है। वह पुलिस विभाग से अवकाशप्राप्त एक अफसर की बेटी थी। उसकी बुआ के बेटे से उसकी शादी निश्चित हुई थी। वह युवक 'वंदेमातरम्' की गोष्ठी में मिल गया। इस पर उसके पिताजी ने और पुलिस इंसपेक्टर से उसका विवाह करा देने का प्रबंध कर दिया। ऐन मौके पर सपने में देवी की आज्ञा पाकर उसने कोई जड़ी बूटी खा ली, जिससे उसे भयंकर ज्वर आ गया और शादी रुक गयी । फिर तो पिताजी चल बसे। इसी बीच उसका प्रेमी वह मद्रासी युवक उसे मृत समझकर संन्यास की दीक्षा के लिए घर से निकल गया।"

ओह ! अधीर मन ! सब्र करना ! टूट न जाना ! जहां तक हो सका अपने को रोकना चाहा, लेकिन हार गया । चिल्ला उठा – "हाय री मीना! मीना !" फिर बोला, "सतीश बाबू ! बताइये । अब उस पर कौनसी मुसीबत आयी है ?"

सतीश बाबू समझ गये। बोले, "अब कुछ नहीं । सकुशल है ।"

"नहीं - नहीं । आप मुझसे कहने से हिचकते हैं। सच सच जान लूं तो दुखी हो जाऊंगा।

यह सोचकर मुझसे कुछ छिपा रहे हैं, यही मेरे लिए नरक सी यातना है - कृपया कह दीजिये ।" मैं आग्रह करने लगा। इस पर सतीश बाबू उल्टे-सीधे कुछ कहकर मुझे आश्वासन देने लगे ।

मैंने कहा, "नहीं - मुझ से सच-सच कह देना । भारतमाता की, भागवत्गीता की प्रतिज्ञा है । .... कहिये ।" मैं जानता था कि सत्य व प्रतिज्ञा का शब्द बंगालियों को कहां तक बांध लेता है .... मजबूर कर देता है । मेरे ये शब्द सुनकर वे जरा नाराज हो गये।

"अरे ! नादान संन्सायी। कैसी बातें कह दीं आपने ! सुनिये ! अब सच बताता हूं। वह युवती यहां के नामशूद्रों की सेवा में अकाल निवारण सेवाकार्य में लगी थी कि उसे सर्दी लग गयी। बुखार चढ़ा।डाक्टरों ने कह दिया कि उसका बचना जरा कठिन है। आशा बहुत कम है। वह युवती चाहती थी कि वह अंतिम सांस काशी में ले। इस पर अश्विनी बाबू उसे काशी ले गये हैं। अच्छा सच कह दिया, चले जाना ।" सतीश बाबू ने कहा।

"काशी ?"

"हां।"

"काशी में कहां ?"

"उसी घाट पर ।"

"उसी घाट पर कहां ?"

"उसी के जरा दक्षिण में 'नरवा' नामक स्थान है वहां पर कई बंगले और बाग-बगीचे हैं। उसमें तैप्पूर महाराजा के बंगले में अश्विनी बाबू ठहरे हैं।"

मैंने कहा – "रेल का भाड़ा दीजिये ।"

उन्होंने दस रुपये का नोट निकालकर मेरी तरफ फेंक दिया। मान-अपमान को किसने देखा ? नोट लेकर वहां से निकल पड़ा। रास्ते भर खाने को हृदय और पीने को आंसू के अलावा कुछ न लिये काशी जा पहुंचा ।

5

काशी में हनुमान घाट पर मेरे परिचित लोग हैं। मेरे मित्र-बंधु वहां पर निवास करते हैं। यदि पाठकों में से कोई काशी गये हैं तो मेरे बताये हुए स्थान उनको साफ मालूम होंगे। तमिलनाडु के लोग ज्यादातर हनुमान घाट पर ही जाते हैं। वहां पश्चिम दिशा की ओर एक गली है न ? उसमें पूरब-पश्चिम के कोने से तीसरे मकान का नाम है 'शिवमठ'। यात्रियों के ठहरने के लिए जो मकान हैं उन्हें काशी में मठ कहते हैं। मैं शिवमठ में गया। स्नान करके, मठ वालों ने जो कुछ दिया उसे खाकर, उस मठ के एक लड़के को साथ लिये तुरंत नरवा मुहल्ले की ओर चल पड़ा। वहां तैप्पूर राजा के बंगले का पता लगाकर, बंगले में पहुंचा तब तक सात बज गये थे। द्वार पर एक घोड़ागाड़ी खड़ी थी। गाड़ी में अंग्रेजी ढंग की पोशाक पहने एक बंगाली सज्जन बैठे थे । उनके पास एक वृद्ध और एकाध लोग खड़े थे । अश्विनी कुमार दत्त के फोटो को मैंने कई जगहों पर देखा था इसलिए पहचान लिया कि वह वृद्ध ही अश्विनी कुमार हैं। मुझे

देखते ही उन्होंने पास खड़े एक व्यक्ति से कहा, "कोई संन्यासी आया है। उन्हें बरामदे में ले जाना। मैं अभी आता हूं।" बरामदे में पड़ी दो कुर्सियों पर मैं, और मेरे साथ आया लड़का, दोनों जा बैठे वहां से अश्विनी बाबू और उस सज्जन की बातचीत साफ सुनाई पड़ रही थी।

अश्विनी बाबू — "डाक्टर साहब ! लगता है, कल से आज हालत थोड़ी सुधरी है । आपकी क्या राय है ?"

डाक्टर - "बहुत कमजोरी है । और चौबीस घंटे खतरा ही है - यह खतरा टल जाये तो कोई चिंता नहीं ।"

विष-बुझे नाराज से ये शब्द मेरे कानों में गये । चिल्ला उठा — "मीना ! मीना !"

गाड़ी निकल गयी ।

मेरी चिल्लाहट सुनकर, अश्विनी बाबू और अन्य लोग मेरी तरफ आने लगे । उन्हें देखकर मैं संभल गया और खड़े होकर हाथ जोड़े ।

"स्वामी जी ! कहां के हैं आप ? यहां आने का मतलब क्या है ? क्यों चिल्ला उठे थे आप ।" बाबू ने हिंदुस्तानी में पूछा ।

"बाबू जी ! मैं कोई साधु-संन्यासी तो नहीं । चोर हूं, दुर्भाग्य का मारा हूं। मीनांबाल ने आपसे गोविंदराजन का नाम कहा होगा। वह पापी मैं ही हूं ।"

तुरंत बाबू जी मुझे छत पर एक कमरे में ले गये और बोले, "कल तो मैं कई बार आपके बारे में सोच रहा था। मुझे लगा कि आप यहां पर आ जायेंगे।"

फिर आदेश दिया, "पूरब की तरफ मुख करके बैठ जाइये।" मैंने वैसा ही किया । दोनों आंखें मूंद लीं । वे मेरे माथे पर हाथ फेरते कुछ गुनगुनाते रहे । मुझे नींद सी आने लगी । मन में आया, हाय ! मीना को देखा तक नहीं ..... मेरी प्राणप्रिया मरणासन्न पड़ी है। उसे देखने के पहले ही मुझे ऐसी नींद क्यों आ रही है ? ओह ! ये तो मुझ पर कोई जादू फूंक रहे हैं । मेरी प्रिया का दर्शन करने से मुझे रोकना चाहते हैं। नहीं — इस माया से छूटना है — आंखें खोल देना है। मैंने उठने की पूरी कोशिश की । ' हूं ' .... की आवाज आयी । आंखें खोल न पाया । बेहोशी बढ़ती जा रही थी कि मैं निद्रामग्न हो गया।

जब मेरी आंखें खुलीं, तब मालूम हुआ कि मैं दो दिन निद्रामग्न रहा । पास बैठे एक सेवक से पूछा, "मीना कहां ? मीना कुशल से तो है न ?" उसने कहा, "मुझे कुछ नहीं मालूम।" मैं हमेशा के जैसे होता तो उस दरबान पर लात मारकर सामने जो भी आता, उसे गिराकर उसके पास भाग जाता। लेकिन मेरा शरीर बेहद थका था और हृदय में अपूर्व शांति का अनुभव हो रहा था। मन का सारा ताप मिट गया था । समझ गया .... बारिसाल के वृद्ध का जादू है यह। आधे घंटे के बाद अश्विनी बाबू मेरे कमरे में आये और सामने की कुर्सी पर बैठ गये। अनायास मैंने हाथ जोड़े।

'ओम्' कहकर उन्होंने आशीर्वाद दिया । बोले, "हे बाल संन्यासी ! कपटी संन्यासी ! अर्जुन संन्यासी ! तेरा भाग्य खुल गया।"

जान लिया कि मीना बच गयी। पूछा, "मीना स्वस्थ हो गयी ?"

"पूर्ण रूप से स्वस्थ हो गयी। और पचास साल तक चाहे समुद्र में धकेल दे, उसकी कोई

हानि न होगी।"

"मुझे अब जाने की आज्ञा दीजिये। वह मर जायेगी, इस आशंका से अपना व्रत भी भूलकर मैं उसे देखने यहां भागता आया था । अब तो उससे मिलने या उसके साथ रहने का मेरा विचार नहीं । मैं चला जाऊंगा ।"

अश्विनी बाबू जोर से हंस पड़े और पास खड़े दरबान से कहा, "इनके लिए थोड़ा दूध ले आना।" दरबान हाथ-मुंह धोने के लिए पानी और पीने के लिए दूध ले आया। अश्विनी बाबू के दिये उस दूध का पान करते ही लगा जैसे कुट्रालम के झरने में स्नान कर लिया। मेरी सारी थकावट न जाने कहां भाग गयी । मैंने बड़े आराम और शांति का अनुभव किया।

"अब कहो ! जाना चाहते हो तुम ?" मुस्कुराते हुए अश्विनी बाबू ने पूछा ।

मैंने उत्तर दिया, "बस एक बार उससे मिलकर चला जाऊंगा ।"

एकाएक अश्विनी बाबू की मुस्कुराहट श्रद्धा की स्निग्धता में बदल गयी । उन्होंने कहा, "बेटा ! तुम मीना से विवाह कर लेना। आप दोनों पति-पत्नी, प्राचीन काल के ऋषि-ऋषिपत्नी जैसे यज्ञ करते रहे, वैसे जिंदगी भर माता की सेवा में जीवनयज्ञ करते रहियेगा।"

मैंने पूछा, "देवी काली की आज्ञा का क्या होगा ?" इस जन्म में गोविंदराजन से विवाह करना नहीं है, ऐसा देवी ने मीना को आदेश देकर, विषैली बूटी खाने की आज्ञा दी थी — उस बात की मैंने याद दिलायी ।

इस पर उन्होंने कहा,"वे सारी बातें मुझे मालूम हैं । देवी काली के आदेश को अच्छी तरह समझे बिना, मीना ने तुमको पत्र लिख दिया था। मीना के जन्म-परिवर्तन को लेकर देवी ने जो कुछ कहा उसका मतलब कुछ और था। वह तो जीवन के परिवर्तन की ओर इशारा था । उसे विषैली बूटी खाने का आदेश इसलिए दिया था कि उसे ज्वर आये, और पिताजी द्वारा निश्चित विवाह रुक जाये। ज्वर के पहले उसका जन्म और था — और बाद में कुछ और बन गया । देवी का संकेत स्पष्ट था । लेकिन एक अनचाहे व्यक्ति के साथ विवाह होने के भय से मीना परेशान थी, इसी अकुलाहट में उसने तुम्हें वह पत्र लिख दिया था। और तुमने भी भावावेश में आकर काषाय धारण कर लिया। याद रखो, किसी गुरु ने तुम्हें दीक्षा नहीं दी है । मगर जो कुछ हुआ, तुम दोनों की भलाई के लिए ही हुआ है। तुम दोनों की हृदय-शुद्धि के लिए वह वियोग अनिवार्य था। अच्छा ! अब मैं जाता हूं आज शाम को चार बजे, पुष्पवाटिका के लता मंडप में मीना तुम्हारी प्रतीक्षा करेगी ।" अश्विनी बाबू चले गये ।

शाम हो गयी । मैंने संन्यासी का वेश बदलकर, सामान्य पोशाक पहन ली । मैं, और मेरी प्रिया लता मंडप में, जैसे मेरे प्राणों ने ही प्रिया का रूप धारण कर लिया हो, मिलन सुख का आनंद ले रहे थे। हमारे अधर मिले। दो प्राण एक शरीर माता की सेवा के लिए जुट गये।

प्रकृति रूपी देवी माता के मुखारविंद पर मुस्कुराहट खिल उठी थी ।

यों ही

कल शाम मैं यों ही अकेले तीसरी मंजिल पे जा बैठा । मेरे मकान में दूसरी मंजिल पर जाने के लिए सीढ़ियां नहीं हैं । किराये का मकान है । मकानमालिक चेट्टियार से मैंने कई बार सीढ़ी बनवाने को कहा है । वे तो आज नहीं कल, कहकर टालते आ रहे हैं । तीसरी मंजिल पर पहुंचना जरा मुश्किल है । छोटी सी मुंडेर पर खड़े होकर वहां से, एक आदमी के बराबर ऊंचाई पर उचककर चढ़ना पड़ेगा । तीसरी मंजिल की मुंडेर को हाथ से पकड़कर, नीचे से ऊपर की तरफ चढ़ते वक्त जरा सा हाथ फिसल जाये तो इतनी ऊंचाई से गिरकर सख्त चोट खानी पड़ सकती है । मैं तो एंकातप्रिय हूं । इसलिए अक्सर बड़ी मुश्किल से ऊपर चढ़ जाता था और घंटों बैठा रहता था । मार्घशीर्ष का महीना था । हवा में ठंड थी । धूप खाने के लिए यह स्थान बड़ा सुहावना लगा ।

कल शाम को मैं वहां धूप में बैठा था कि कुळ्ळ स्वामीजी (नाटे कद के स्वामी जी) और वेणु मुदली दोनों ऊपर आये । उन दोनों ने दूसरी मंजिल के खुले आंगन में खड़े होकर मुझे बुलाया । नीचे उतरने के लिए मैंने धोती कसकर बांध ली । इतने में कुळ्ळ स्वामीजी ने मेरी तरफ देखकर कहा, "तुम वहीं रहो। हम ऊपर चढ़ आते हैं ।"

शायद आपको याद होगा, इन स्वामी जी के बारे में मैंने पहले भी लिखा है । ये कलियुग के जड़ भरत हैं । महाज्ञानी । समस्त जीवों के प्रति दया करने वाले दयालु हैं । योगींद्र हैं । राजयोग द्वारा श्वास बंधन करने वाले महान हैं । देखने में भिक्षुक से लगते हैं । फटे-पुराने चीथड़े पहने सड़कों पर घूमते रहते हैं । न जाने कैसे स्त्रियां व बच्चे इनकी महिमा से अवगत थे । सड़कों पर चलते वक्त, इन्हें देखते ही भाग आते और टांगों से लिपट जाते। वे भी मासूम हंसी के साथ उनको प्यार करते और पुचकारते थे । लेकिन सामान्य जनता उनकी महिमा से बेखबर थी ।

पलक मारने के पहले वे मुंडेर के ऊपर चढ़ गये और वहां से छलांग मारकर ऊपरी छज्जे पर आ गये । इनके देखा-देखी वेणु मुदली भी ऐसी छलांग मारने के इरादे से मुंडेर की तरफ लपके । यह निशाना तो ठीक लगा । लेकिन ऊपरी छज्जे की ओर उछलते वक्त पांव चूक गया और वह धड़ाम से नीचे गिर गये । कमर और घुटने पर सख्त चोट आयी। मेरे जैसे होते तो आठ दिन बिस्तर न छोड़ पाते लेकिन वेणु मुदली हट्टे-कट्टे आदमी थे। 'तगड़े पहलवान' इसलिए कुछ मिनटों में संभलकर ऊपर आने लगे । यह देखकर स्वामीजी

ने मुझसे कहा, "अच्छा ! हम नीचे चलें ।" मैं सहमत हुआ और हम दोनों वेणु मुदली को ऊपर आने से मना करते हुए नीचे उतर आये । दूसरी मंजिल के खुले आंगन में तीन कुर्सियां डालकर बैठ गये ।

वेणु मुदली ने मेरी ओर देखकर पूछा, "अजी, हनुमान जी की भांति वहां चढ़े अकेले में क्या कर रहे थे ?"

मैने उत्तर दिया, "यों ही बैठा था ।"

बस, वेणु मुदली का पारा चढ़ गया । जोर-जोर से चिल्लाने लगा, "यों ही – यों ही, यों ही ... अजी ! ऐसे निठल्ले बैठे-बैठे ही हिंदुस्तान का सर्वनाश हो गया है न ? अब भी क्या एवमेव ?"

"इस देश में जिसे देखो 'यों ही' बिना कार्य-कारण के बैठा है। लाखों की तादाद में हैं – साधु, संन्यासी, पंडा, फकीर, स्वामी ! झुंड के झुंड निठल्लों का जमघट । गांजा पीना, भीख मांगना, आलसी बने बेकार इधर-उधर भटकते रहना ही इन लोगों का धंधा है । दो जून खाने को कुछ है तो बस । इस देश में किसी को किसी काम-धंधे में लगने की आदत नहीं । जमींदार, जागीरदार, मठाधिपति, महंत, राजा, महाराजा व संघ का एक मात्र धंधा है 'यों ही' रहना । आवारागर्दी करना । यह तो आलसियों का, कामचोरों का देश है।"

वेणु मुदली इस प्रकार बड़बड़ाता रहा, इधर कुळ्ळ स्वामीजी पश्चिम की ओर मुंह करके 'सुम्मा इरुप्पट्टुवे सुट्टर पूरणम् एन्रेम्माल अरिदर केलिदो परापरमे' (यों ही रहना जीवन की पूर्णता है, ऐसा समझना हमारे लिए सुलभ कहां है ? हे परमात्मा !) ऐसा तायुमानवर (तमिल के संत कवि) का पद गाने लगे ।

वेणु मुदली ने उनकी तरफ देखकर कहा, "स्वामीजी ! कालिदास के मुंह से सुना था कि आप कोई बड़े राजयोगी हैं । मैं आपसे नहीं बोलता, कालिदास से कहता हूं । आप तो अपने को संन्यासी घोषित करके, इस जन्म को जड़ वृक्ष के जैसे निष्फल बिताने वालों में एक हैं । वृक्ष क्यों कहें ? वृक्ष तो दूसरों को अपना फल देता है, फूल देता है, काष्ठ देता है । उससे आपकी तुलना करना गलत है । आप जैसे लोगों से दूसरों को हानि पहुंचती है, मगर वृक्ष से दुनिया को लाभ है, न जाने कितनों का उपकार करता है वह !"

वेणु मुदली बोलता रहा । कुळ्ळ स्वामीजी ने तायुमानवर का एक गीत गाया –

"सुम्मा इळ्ळ सुखम सुखमेन्द्र करुदियेल्लाम्
अम्मा निरन्तरम् चोल्लवुम केट्ट अरिविन्द्रिये,
पेम्मान मवुनि मोळियैयुन् तप्पि एन पेदम्मैय्याल
वेम्मायक् काट्टिल अलैन्देल अन्दो एन विधिवसमें।"

(निस्पृहता से ब्रह्मस्थान में लीन रहना ही सुख है । इस सुख को त्यागकर अन्य सांसारिक सुखों को सुख मानकर, भगवान दक्षिणामूर्ति का उपदेश भूलकर अपने अज्ञान के कारण इस मायापूर्ण जगत रूपी अरण्य में प्रारब्ध के कारण भटकता रहा।)

वेणु मुदली को चोट लग गयी थी न ? मारे दर्द के वह मन ही मन उबल रहा था। तिस पर स्वामीजी को ऐसे हंसते-हंसते गाते देखकर उसका पारा चढ़ गया, "हे स्वामीजी! आप तो पुराने जमाने के आदमी ठहरे ! आपसे मैं विवाद करना नहीं चाहता । मेरी प्रतिभा आप क्या जानें ? मैं बारह भाषाओं का ज्ञाता हूं । आप केवल तमिल जानते हैं । यह महायुद्ध खत्म होते ही मैं यूरोप ओर अमेरिका जाकर वहां हिंदू धर्म को संस्थापित करने वाला हूं। आप तो भीख मांगकर खानेवाले, कहीं किसी चबूतरे पर पड़े रहने वाले साधु हैं । हम दोनों का मेल नहीं बैठता । लेकिन देशसेवा का दम भरने वाले इस कालिदास को इस तरह आलसी, निठल्ले, साधुओं की संगति में अपना समय लगाते देख मुझे बड़ा आश्चर्य हो रहा है । लगता है, शायद आप से ही उन्होंने ऐसा 'यों ही' (ब्रह्मध्यान में लीन रहना) रहना सीख लिया होगा ।" वेणु मुदली व्याकरण सम्मत पंडिताऊ भाषा में बोलता जा रहा था । स्वामीजी तायुमानवर का पद गाने लगे -

"सुम्मा थरुळ्ळ सुखम् उदयमागुमे,
इम माया योगम् इवि एन्डा - तम्मवरिविन्
सुट्टाले यागुमो सोल्लमेण्डाम
कर्मनिष्ठा सिरु दिल्लाय नी !"

(हे, कर्म में निष्ठ रहने वाले अबोध मन ! ब्रह्मज्ञान में लीन रहकर 'यों ही' रहने से सुख का उदय होगा। सुखानुभूति प्राप्त होगी। अब ये मायापूर्ण योगादि क्रियाएं क्यों ? बुद्धिपूर्वक विचार करना काफी है।)

वेणु मुदली ने मेरी तरफ देखकर पूछा, "कालिदास जी ! इस साधु से आपका कितने दिनों से परिचय है ?"

मैंने कोई उत्तर न दिया । यों ही मौन रह गया । कुळ्ळ स्वामीजी ने बोलना शुरू किया।

यह कहानी बड़ी लंबी है। संक्षिप्त रूप से कहूं तो भी दो भागों में कहनी होगी । शायद चार-पांच अध्याय भी बन जायें । कागज की तंगी के इस जमाने में इतनी लंबी कहानी क्यों सुनाता रहूं ? पूछें तो बताना होगा कि यह कहानी बड़ी रोचक है। अद्भुत है। ऐसी कहानी मैंने अब तक नहीं लिखी, न कहीं पायी है । आप भी उसे पढ़ें तो विस्मय-विमुग्ध हो जायेंगे । शायद हां, हूं,करके नाचने गाने लगें । ओह ! मैंने वैसी अद्वितीय, अकथनीय, अवर्णनीय कहानी नहीं सुनी । इसलिए इस संसार में अब तक लिखी समस्त कहानियों में निराली कहानी आप लोगों को सुनाने वाला हूं । जरा धीरज रखियेगा ।

2

कुळ्ळ स्वामी जी कहने लगे, "सुनो भाई ! मैं तो खाली बैठे लोगों की गोष्ठी का हूं। निठल्ले साधु-संन्यासियों के कारण इस देश का सर्वनाश हो गया ऐसा तुमने जो कहा .... वह ठीक नहीं । अधर्म के कारण देश का पतन हुआ है। केवल संन्यासियों ने अधर्म नहीं किया।

गृहस्थों ने अधर्म का पालन करना शुरू किया तो संन्यासियों को भी अधर्म ने घेर लिया। अब भी सच्चे योगी-महात्मा इस देश में है उन्हीं के कारण इस देश का सर्वनाश होने से बचा हुआ है । अब तो सारा संसार डोल रहा है, बड़े-बड़े राज्य गिरते जा रहे हैं लेकिन हिंदुस्तान ऊर्ध्वमुखी होकर उन्नति की ओर अग्रसर हो रहा है । जीऊं और इस संसार को भी जिला दूं .... ऐसी आशा और धैर्य हिंदुस्तान के लोगों के मन में जागृत हो उठा है । इसके पूर्व भी ऐसे कितने ही प्रलयों से वह बच गया है । कुछ दिनों पहले, अपनी नयी प्रयोगशाला का उद्घाटन करते हुए श्री जगदीशचंद्र बसु ने क्या कहा था ? उसे तुमने पढ़ा है ? पापिलोन व नील नदी के तट पर विकसित सभ्यताएं पूर्णतया मिटकर फिर से जन्म ले चुकी हैं, मगर हिंदुस्तान की संस्कृति एवं सभ्यता पूर्ववत जीवंत है क्योंकि आत्मपरित्याग जो समस्त धर्मों में विशिष्ट धर्म है इस देश में पूर्ण रूप से मिटा नहीं है। वह अब भी लोगों के अनुष्ठान में है । ऐसा बसु ने बताया है ।" स्वामी जी बोलते जा रहे थे कि वेणु मुदली ने बात काटी, "स्वामी जी ! क्या आप अंग्रेजी जानते हैं ? क्या आप अखबार पढ़ते हैं? जगदीशचंद्र बसु ने जो कुछ कहा है, वह आपको कैसे मालूम हुआ ?" स्वामी जी ने कहा, "अनावश्यक बातें मत पूछो । मेरी बात ध्यान से सुनो, योगी पुरुष ही युग-युगों से हिंदुस्तान की आत्मा की रक्षा करते आ रहे हैं । इस भयंकर कलियुग में जब सारे संसार में उथल-पुथल मची है हिंदुस्तान न विचलित हुआ है, न मिटा है । खुद अपने को संभालता हुआ औरों की रक्षा करने की, जीवनदान देने की जीवशक्ति इस देश को उन योगियों के तपोबल से प्राप्त है, और कुछ नहीं ।" स्वामी जी जोर से हंस पड़े हा – हा .... नाना प्रकार की औषधि, अवलेह खा-पीकर, हर कोई, एक सौ, एक सौ पचास पत्नियों से भरे अंतःपुर में उलझे, विलासिता में डूबे, कुत्तों जैसे एक-दूसरे पर टूटने और लड़ते रहे और हिमालय के उस पार से आये विदेशियों के आक्रमण होते ही जो गीली दीवार के समान ढह गये, उन राजा-महाराजाओं के शौर्य के बल पर यह देश अब तक जीवंत है ऐसा मानते हो, भाई ? या मानते हो कि उन ब्राह्मणों के ब्रह्मतेज से यह देश अमर बना है जो हर दिन पौ फटते ही इस प्रतीक्षा में रहे कि कौन मरेगा ? कहां ब्रह्मभोज मिलेगा? कहां मृतक के क्रियाकर्म, संवर्डीकरण मनाये जाते हैं .... इस प्रकार चक्कर लगाते और बिना अर्थ जाने वेदमंत्रों की टर-टर लगाते रहते हैं । आप समझते हो कि आप वैश्यों के लोभ पर यह देश उज्जीवित है ? या शूद्रों के अविवेक या नादानी पर ? पंचम् अर्थात निम्न जातिवालों की इस दशा के कारण इस मिट्टी को अमरत्व प्राप्त है ? कहो ! तुम्हारा कैसा विचार है ? हिंदुस्तान को अमरत्व किस बात पर मिला है ?

अरे ! वेणु मुदली ! ध्यान दो जरा ! तुमने कहा था कि युद्ध के समाप्त होने पर हिंदू धर्म को संस्थापित करने तुम अमेरिका और यूरोप जाने वाले हो । हिंदुस्तान के महान योगी पुरुषों के महत्व से अनभिज्ञ तुम हिंदू धर्म को कैसे संस्थापित करोगे ? यह विचार आते ही मुझे बड़ी हंसी आ रही है ।

वेणु मुदली ! सुनो ! यह हिंदुस्तान उन महायोगियों की महिमा पर ही अब तक जिंदा

है। जब तक यह संसार रहेगा तब तक यह देश अमर रहेगा । अरे, वेणु मुदली – यह देखो ! देखो ! देखो ?"

कुळ्ळ स्वामी जी के मुंह से ये शब्द निकलते ही मैंने और वेणु मुदली ने उनकी तरफ देखा ।

कुळ्ळ अर्थात् कद के नाटे स्वामीजी की आकृति लंबी हो गयी । जो पौने पांच फुट के थे अब पौने आठ फुट के हो गये ।

एक आंख सूर्य की तरह भासमान थी । दूसरी आंख चंद्रमा की तरह प्रकाशमान थी। दायीं तरफ से देखें तो उनका चेहरा शिवजी सा लगा । बायीं तरफ देवी पार्वती सा । झुके तो विघ्नेश्वर जैसे प्रतीत हुए । तनकर खड़े रहे तो भगवान विष्णु सा मुखमंडल लगा। स्वामीजी बोले, "हे, वेणु मुदली ! श्रवण करो । मैं हिंदुस्तान के समस्त योगियों का अधीश्वर, योगेश्वर हूं । ऋषियों में शीर्ष स्थान रखता हूं । मैं देवताओं का अधिपति हूं । मैं ही ब्रह्म हूं, विष्णु हूं, शिवजी हूं । हिंदुस्तान का सर्वनाश होने से मैं इसकी रक्षा करूंगा। समस्त भूमंडल में मैं धर्म की संस्थापना करूंगा ।

मैं कृतयुग का संस्थापक बनूंगा । मैं ही परम पुरुष हूं । पूर्व आचार्यों ने आप लोगों को कौन सा संदेश दिया है ? समस्त जीवात्मा एक हैं इसलिए कौवे से लेकर कीड़े-मकोड़ों तक किसी के प्रति अकरुण न होना । दया दिखाना ऐसा कहा है ।

हे वेणु मुदली ! सुनो –

शैव धर्माचारियों ने वैष्णव धर्म का वर्जन किया। वैष्णव धर्माचारियों ने शैव धर्म का निषेध किया ।

मैं एक बात कहूंगा ।

कौवे पर दया न दिखाना । उलटे हाथ जोड़ना । हाथ जोड़कर प्रणाम करो । कीड़े-मकोड़े को प्रणाम करो । हवा और मिट्टी को दंडवत् प्रणाम करो ।

वेदों मे जो कुछ कहा गया है, उसे अपने कर्मों में उतारने वाला हूं । समस्त पुराणों को एकत्रित करके उनके एकत्व को स्थापित करने वाला हूं । हिंदू धर्म को प्रतिष्ठापित करूंगा ।

वेद कहता है कि धरती, आकाश, वायु, सूर्य, चंद्र समस्त जीव-जंतु, हम-तुम, सब ईश्वर हैं । ये ही देवता हैं। इसके अलावा इनके कोई देवता नहीं । दृश्य जगत नारायण है। इसी को अपने हृदय में प्रतिष्ठित करके, इसकी आराधना में लीन होकर मानव को उसके ध्यान में आत्मविस्मृत होना है ।

सुनो ! उस अवस्था में नारायण हममें व्याप्त रहेगा । इस साधना मार्ग का आचरण करने से मानव प्रवृत्ति से मुक्त होकर मैंने अमरत्व को प्राप्त किया है । इसलिए मैं स्वयं देव बन गया । देवताओं का मैं अधिपति हूं । मेरा नाम विष्णु है । मैं शिवजी का पुत्र हूं, मैं ही गणपति हूं, मैं अल्लाह हूं, येहोवान् हूं, पवित्र आत्मा हूं, समस्त जीव-जंतु मैं ही हूं ।

मैं पंचभूत हूं , अहं सत्; कृतयुग को मैंने आदेश दिया है, इसलिए कृतयुग आता है। प्रत्येक जीव किसी और जीव की हिंसा न करे, समस्त जीव अपने से अन्य जीव को देवता स्वरूप मानें और उसके प्रति श्रद्धा रखें तो वही कृतयुग है । मैं ऐसे कृतयुग को संस्थापित करूंगा ! हे वेणु मुदली ! मैं तुम्हारे समक्ष खड़ा हूं । मुझे पहचान लो ।"

इतने में मुझे मूर्च्छा सी आ गयी थी। आधे घंटे के उपरांत जब मैं होश में आया तो देखा, वेणु मुदली भी मेरे पास मूर्च्छित पड़ा है । फिर उसका उपचार करके उसे होश में लाया ।

वेणु मुदली ने मेरी पत्नी से पूछा कि कुळ्ळ स्वामीजी कहां हैं? उसने बताया, कुळ्ळ स्वामीजी नीचे उतर आये थे । मैंने थोड़ी सी खीर और केला खिला दिया था। खा-पीकर उन्होंने मुझे और बच्चों को विभूति दी और आशीर्वाद देकर चले गये । मैंने उनसे पूछा कि आप लोग छत पर क्या बातें कर रहे थे । इस पर उन्होंने कहा, 'वह मूर्ख वेणु मुझसे हिंदुत्व पर तर्क-वितर्क कर रहा था।' यह कहकर हंसते हुए चले गये ।"

अंधकार

आठ सौ साल पहले की बात है। विद्यानगर नामक शहर में दृढ़चित्त नामक एक राजा रहता था । उसके बंधुओं में से कुछ लोग शत्रुता के कारण उसे अनेक प्रकार के कष्ट देने लगे। एक दिन वह महल में सो रहा था । शत्रुओं ने राजमहल के कुछ सेवकों से सांठगांठ कर ली और अंदर घुस आये । राजा के हाथ-पांव बांधकर उसे उठा ले गये । पास की पहाड़ियों में एक गुफा थी । राजा को उस गुफा में डाल दिया और द्वार को एक भारी पत्थर से बंद कर दिया ताकि वह बाहर न आ सके । राजा को कोई जड़ी-बूटी सुंघाकर बेहोश कर दिया था कि उसकी आंखें न खुलें।

बड़ी देर बाद बूटी का नशा उतरने पर राजा की आंखें खुलीं । देखा, उसके हाथ-पांव बंधे हैं और वह घने अंधकार में पड़ा है । कहां हूं मैं ? ... उसने माथा टटोला । उसे पता न चला कि वह कहां है । किसने मेरी यह गति करायी होगी ? इस पर विचार किया, मगर समझ में न आया । खड़े होने की कोशिश की लेकिन उठ न पाया । प्यास से गला सूख रहा था । आंखें पथरा गयीं । दिल जोर-जोर से धड़कने लगा । चिल्ला उठा – "हाय! भगवान ! मेरे प्राण लेने का निश्चय कर लिया ?"

आवाज आयी – "हां।"

"हां कहनेवाले तुम हो कौन ?" राजा ने पूछा ।

"मैं यमदेव हूं । तुम्हारा प्राण ले जाने आया हूं ।" अदृश्य वाणी ने कहा ।

दृढ़चित्त ने कहा, "मैं जवान हूं। मेरी पत्नी बुद्धिमती स्नेह करने वाली है, सिंह के छौने सा वीर पुत्र है, इन्हें और यशस्वी राज्य को छोड़कर तुम्हारे साथ जाने को मेरा दिल नहीं चाहता। तुम यहां से चले जाओ।"

अदृश्य वाणी ने ठहाका लगाया।

"मुझे कब ले जाने का इरादा है ?" दृढ़चित्त ने पूछा ।

"पौ फटने से एक पहर पहले।" यह सुनते ही दृढ़चित्त हताश हो गया । माथा और चकराया। हाथ-पांव फूल गये । दिल की धड़कन बढ़ गयी । तभी उसे अपनी मां के बताये हुए मंत्र की याद आयी जिसका वह प्रायः उच्चारण करती थी । तुरंत उसका आह्वान किया जो उसकी मां ने मरने के पहले उसे बुलाकर उसके कानों में कहा था । "बेटा ! चाहे जितनी बड़ी आफत आये इस मंत्र का उच्चारण करना, वह दूर हो जायेगी ।" राजा ने उसका

उच्चारण अब किया । "करोमि" (करता हूं), यही वह मंत्र था । राजा ने 'करोमि', 'करोमि', 'करोमि', तीन बार कहा ।

एक सांप ने आकर उसके पैर को डस लिया ।

वह चिल्ला उठा – "हे मां ! यही तुम्हारे मंत्र का फल है ?"

"घबराना मत ! मंत्र का उच्चारण करो, मंत्र का उच्चारण करो ! मंत्र का उच्चारण करो ।" आवाज आयी ।

वह आवाज उसे अपनी मां की सी लगी ।

'करोमि', 'करोमि', 'करोमि' (करता हूं - करता हूं) वह जप करने लगा ।

'करो', 'करो', 'करो', ... आवाज आयी

राजा ने तुरंत सांस रोकर अमानुष्य वेग के साथ हाथों को झटका । हथकड़ियां टूट गयीं । तलवार निकाली । फिर आवाज आयी – करो-करो-करो ! जिस उंगली को सांप ने काटा था उसे झट काटकर फेंक दिया ।

'करो' - 'करो' - 'करो' !

शरीर पर जो वस्त्र था, उसे फाड़कर, मिट्टी में उलट-पुलट करके पांव की उंगली पर पट्टी सा बांध लिया ताकि ज्यादा खून न बहे ।

आवाज ने आदेश दिया - 'करो' ।

तलवार से बेड़ियों को काट दिया ।

तब शरीर पूर्ववत शिथिल हो गया । थकावट महसूस हुई । मूर्छा सी आ गयी । ज्वर चढ़ आया । प्यास से गला सूख गया । "हाय ! क्या करूं ? प्यास सही नहीं जाती ।" वह बिलखने लगा । "मंत्र का उच्चारण करो !" आवाज ने आज्ञा दी ।

'करोमि', 'करोमि', 'करोमि' ।

"करो" – आज्ञा हुई ।

"क्या करूं ?"

"हताश न होना ! कर्मरत हो जाओ ।"

"क्या करूं ?" उसने फिर पूछा ।

"चट्टान से टकराओ ।"

राजा उठकर आया और गुफा के द्वार पर ढके बड़े पत्थर से टकराया । सोचा, सिर की टक्कर मारनी पड़े तो भी चिंता नहीं । उसमें साहस आ गया । सिर फूटा नहीं । जो लोग गुफा का द्वार बंद करके गये थे वे जल्दी में उस बड़े पत्थर को ठीक तरह से रख कर नहीं गये थे इसलिए वह ढ़ह गया और द्वार खुल गया । राजा ने बाहर आकर देखा । सूरज चमक रहा था । अंधकार का पता नहीं । 'करोमि', 'करोमि' का जप करता हुआ वह अपनी राजधानी जा पहुंचा । इसके बाद उसके कोई शत्रु न रहे ।

भविष्य-वक्ता

वेदपुरम् में एक नया डुगडुगिया वाला आया है । डुग्गी बजाने में पैंतीसों ताल के भेद, और उनमें भी एक तालमेल दिखाता है । ताल विद्या में बड़ा निपुण है । कपड़ों का बोझ कंधे पर डाले नहीं फिरता । साफ-सुथरी सफेद धोती, सफेद कुर्ता पहने है । सिर पर लाल कपड़े का बड़ा सा साफा लपेटे है । साफे को देखें तो नेल्लूर के चावल की आधी गठरी सी लगती है । माथे पर कुंकुम की बड़ी गोल बिंदी, बड़ी मूंछें और गल-मुच्छा। उसकी गंभीर मुखाकृति व गोरे रंग पर वह लाल बिंदी खूब फबती है । लंबा कद । मोटा-ताजा शरीर । हैदराबादी चप्पल पहने है ।

कल सवेरे वह हमारी गली में आया । डुग्गी पर ताल बजाया । मृदंग के कुशल कलाकार सा तालमेल निकाल रहा था – बड़ा होशियार है। वह डुग्गी बजाते-बजाते गाने लगा–

डुग डुग डुग डुग डुग................
भाग्य का दिन आता है, भाग्य का दिन आता है;
जातियां एक होतीं झगड़े दूर भागते;
बताओ री, बताओ, शक्ति महाकाळी;
वेदपुरम् वालों को शुभ संदेश दो !
दारिद्रय दूर भागता, सुसंपति भाग आती,
विद्या बढ़ती, पाप मिटता,
शिक्षित व्यक्ति कहे पाप बोले झूठ
मिट जाते वे ! हाय ! चौपट हो जाते
वेदपुरम् में व्यापार बढ़ेगा,
उद्योग-धंधे बढ़ेंगे सुखी रहेगा मजदूर,
शास्त्रोन्नति होगी सूत्रों का ज्ञान होगा
यंत्र बढ़ते, तंत्र बढ़ते,
मंत्रादि बढ़ते, बढ़ते
गुड्ड, गुड्ड, गुड्ड, गुड्ड.......
बताओ री बताओ, मलैयाळ भगवती !
अंदरी, वीरी, चंडिके, शूली !
गुड्ड, गुड्ड, गुड्ड, गुड्ड.......

---

1. प्रातःकाल की बेला में डमरू बजाकर भविष्यवाणी सुनाने वाला शक्तिपूजक डुगडुगिया ।

छत पर से मैंने यह गीत सुना । आश्चर्य हुआ, सोचा कि कोई अनोखा डुगडुगिया है, बड़े आश्चर्य के साथ उसे रुकने के लिए कहा । वह रुक गया । मैं नीचे उतरा और उसे पास बुलाकर पूछा, "तुम कहां के हो ?" वह बोला, "बाबूजी ! डुगडुगिये का क्या ठिकाना ? कहीं जन्म लिया, कहीं पला, और न जाने कहां कहां भटकता फिरता हूं ।" मैंने कहा, "भई! तुम बड़े अजीब लगते हो । मामूली भविष्यवक्ता डुगडुगिये-से नहीं लगते। जरा अपना हाल विस्तार से सुनाओ । मैं तुम्हें बढ़िया जरीदार धोती दूंगा ।"

डुगडुगिये ने कहा, "बाबूजी ! मालूम नहीं कि मैं कहां पैदा हुआ ? मां का चेहरा तक याद नहीं । पिताजी का पेशा भी यही है । वे तो दक्षिण की तरफ के हैं, मैं दस वर्ष का था, तब पिताजी मुझे तंजाऊर ले गये, वहां वे चेचक का शिकार हो गये । तब से मैं इसी पेशे से पेट पाल रहा हूं । भिन्न-भिन्न जगहों पर घूमता-फिरता आखिर हैदराबाद पहुंचा। तब मेरी उम्र बीस वर्ष की होगी। वहां जानसन नामक एक गोरे साहब से मिला । वे किसी कंपनी के एजेंट थे । आदमी बड़े अच्छे थे - भले मानुष । इस देश से देवदासियों, नाच-तमाशे दिखाने वालों, मजाकियों, ऐंद्रजालक आदि कई पेशेवालों को वेतन पर ले जाकर, वह कंपनी यूरोप के विभिन्न देशों में डेरा डालकर खेल-तमाशा दिखाया करती थी । प्रारब्ध की बात थी, मैं भी इस टोली में चला गया । जानसन साहब की कंपनी के साथ मैं इंग्लैड, फ्रांस, इत्यादि देशों में घूम आया हूं । अमेरिका भी गया हूं । दो साल पहले महायुद्ध के प्रारंभ होते ही कंपनी बंद हो गयी । हम सबको रुपया देकर हिंदुस्तान भेज दिया । आजीवन पेट की चिंता नहीं, उतना धन जमा कर रखा है, फिर भी कुल के पेशे को छोड़ने को दिल नहीं चाहा, वह न्यायसंगत भी नहीं, यह सोचकर हिंदुस्तान वापस आने पर इस तरह गांव-गांव घूमता रहता हूं ।

यूरोपीय देशों में भ्रमण करते वक्त और खिलाड़ियों की तरह अपने समय को बेकार न करके, मैंने वहां की भाषाएं थोड़ी सीख ली हैं । अंग्रेजी अच्छी तरह जानता हूं । और कई भाषाओं का भी थोड़ा ज्ञान है । कई पुस्तकें पढ़ी हैं । स्वदेश में लौटकर देखने पर मुझे लगा कि कई एक बातों में हम लोग पिछड़े हुए हैं । अपने परंपरागत पेशे में लगे रहकर गांव-गांव जाकर वहां के लोगों को जहां तक हो सके वास्तविक दशा का, देश की उन्नति की बात समझाने का मैंने निश्चय कर लिया है । यही मेरा ध्येय है ।"

पिछली दीपावली के अवसर पर जो धोती खरीदी थी उसका कपड़ा भी बढ़िया था, मैंने उसे वह जरी की धोती देनी चाही ।

"ना-ना, बाबूजी" कहते हुए वह फिर से डुग्गी बजाता निकल गया ।

> गुड़ गुड़ गुड़ गुड़..........
> बाबू लोगों का साहस बढ़ता
> तोंद सिकुड़ती, चुस्ती बढ़ती,
> अष्ट लक्ष्मी, सुख श्री बढ़ाती,
> भय भाग जाता, पाप धुल जाता

शास्त्र बढ़ता, जाति का भेद मिटता,
आंखें खुलतीं, न्याय, धर्म दीखता,
पुराना पागलपन, फट से हट जाता,
वीरता बढ़ती, उन्नति होती,
कहो री शक्ति ! मलयाल भगवती !
धर्म की जय हो ! धर्म की विजय हो !

डुगडुगिया जाने लगा । उसकी पीठ की तरफ देखते, भगवान का ध्यान करके मैंने हाथ जोड़े ।

अर्जुन का संदेह

हस्तिनापुर में गुरु द्रोणाचार्य के पास पांडुपुत्र और दुर्योधन आदि विद्या अध्ययन कर रहे थे, तब की बात है । एक दिन संध्याकालीन बेला में वे लोग शुद्ध वायु का सेवन कर रहे थे तभी अर्जुन ने कर्ण से प्रश्न किया, "हे कर्ण ! बताओ, युद्ध श्रेष्ठ है या शांति ?" (यह महाभारत की एक उपकथा है । प्रामाणिक है । कपोल-कल्पित नहीं ।)

कर्ण ने कहा, "शांति ही श्रेष्ठ है।"

अर्जुन ने पूछा, "ऐसा क्यों ? क्या कारण है ?"

कर्ण बताने लगा, "हे अर्जुन ! युद्ध हो तो मैं तुमसे लड़ूंगा। तुम्हें कष्ट होगा । मैं तो दयालु हूं । तुम्हारा कष्ट मुझसे सहा न जायेगा । दोनों को दुखी होना पड़ेगा । इसलिए शांति ही श्रेष्ठ है ।"

"हे कर्ण ! मैंने यह प्रश्न अपने दोनों के संदर्भ में नहीं पूछा । सामान्य रूप से पूछा था कि युद्ध अच्छा है या शांति ?" अर्जुन ने कहा ।

"सार्वजनिक बातों में मुझे कोई रुचि नहीं," कर्ण ने कहा ।

अर्जुन ने मन ही मन निश्चय कर लिया कि इस व्यक्ति को मार डालना है । अर्जुन ने गुरु द्रोणाचार्य से इसी प्रश्न को दुहराया ।

द्रोणाचार्य बोले, "युद्ध ही अच्छा है ।"

पार्थ ने पूछा, "कैसे ?"

द्रोणाचार्य ने कहा, "हे विजया ! युद्ध में धन की प्राप्ति होगी, कीर्ति मिलेगी । नहीं तो वीरगति मिलेगी । शांति में तो यह सब कुछ अनिश्चित है ।"

बाद में अर्जुन भीष्म पितामह से मिला । उनसे पूछा, "पितामह ! युद्ध अच्छा है या शांति ?" इस पर गंगापुत्र ने बताया, "वत्स अर्जुन ! शांति ही श्रेष्ठ है । युद्ध से क्षत्रिय कुल की बड़ाई और शांति से संसार को महत्ता प्राप्त होगी ।"

अर्जुन बोला, "आपका कहना न्यायसंगत नहीं लगता ।" पितामह बोले, "वत्स ! पहले कारण बताओ, बाद में अपना निश्चय सुनाओ ।"

"पितामह ! शांति में कर्ण श्रेष्ठ और मैं निकृष्ट हूं । युद्ध हो तो सचाई प्रकट हो जायेगी।"

इस पर पितामह भीष्म ने कहा, "वत्स ! धर्म हमेशा उन्नत रहेगा । युद्ध हो या शांति,

विजय धर्म की ही होगी । इसलिए मन से क्रोधादि को दूर करके शांति की कामना करो। समस्त मानव तुम्हारे भ्रातृतुल्य है । मानव को परस्पर प्रेम से रहना चाहिए । प्रेम ही तारक मंत्र है । त्रिकाल की बात बताता हूं । प्रेम ही तारक है ।" पितामह के नयनों से दो अश्रु-बिंदु ढुलक पड़े ।

कुछ दिनों के उपरांत वेदव्यास मुनि हस्तिनापुर आये । अर्जुन ने उनके पास जाकर अपना प्रश्न दुहराया । मुनि ने कहा, "दोनों ही अच्छे हैं । समय के अनुरूप इन्हें अपनाना है ।"

कई वर्षों के उपरांत वनवास के समय दुर्योधन के पास दूत भेजने के पहले अर्जुन ने कृष्ण से पूछा, "हे कृष्ण ! बताओ, युद्ध अच्छा है या शांति ?"

कृष्ण ने कहा, "अब तो शांति ही भली लगती है । इसीलिए शांति का दूत बनकर मैं हस्तिनापुर जा रहा हूं ।"

नीम का वृक्ष

वसंत ऋतु में एक दिन प्रातःकाल की बेला में मैं मलयगिरि पर्वत की उपत्यका में अकेले घूम रहा था । बड़ी देर तक घूमने से शरीर थोड़ा सा थक गया । विश्राम करने के इरादे से मैं एक बगीचे में जाकर नीम की छाया में लेट गया । मलय पवन सुहावना लग रहा था । थोड़ी देर में मेरी आंख लग गयी । मैं निद्रामग्न हो गया । तब जो अपूर्व सपना देखा उसे लिख रहा हूं ।

निद्रामग्न मेरे कानों में 'रे मानव ! रे मानव ! उठो ! उठो ! ....' ऐसी अमानुष आवाज गूंज उठी । आवाज सुनते ही मैं जाग उठा । जाग्रत अवस्था में नहीं । सपनावस्था का जागरण था अर्थात् मैं सपने में जाग गया ।

पूछा, "कौन है ?"

"मैं नीम का वृक्ष हूं । मैंने ही आवाज दी । उठो।" उत्तर आया ।

तुरंत सोच में पड़ गया, ओहो ! ओहो ! यह न जाने कौन है ? भूत, पिशाच हो, या यक्ष, गंधर्व, किन्नर, आदि देवता है, वन देवता है । नहीं तो नीम का वृक्ष कहीं बोलता ? छिः ! छिः ! भूत हो या पिशाच, यह सब कोरी कल्पनाएं हैं न ? असल में मेरी आंखें तो नहीं खुलीं । स्वप्नावस्था में ही हूं न ? यह आवाज तो स्पप्निल दशा से सुनाई पड़ी है। यह तो काल्पनिक है। ऐसा सोचता रहा कि फिर आवाज आयी, "हे मानव ! हे मानव! उठो।"

मैंने फिर पूछा, "तुम कौन हो ?"

"मैं हूं नीम का वृक्ष । मेरी छाया में तुम लेटे हो । तुम्हें कुछ विशिष्ट बातें सिखाने के लिए ही जगा रहा हूं ।"

सोचा, 'शेक्सपियर ने कहा है कि दुनिया में बहुत सी बातें है जिनका हमें कोई ज्ञान नहीं है । शायद इस दृष्टि से वृक्षों में भी बोलने की शक्ति होगी और मैं भी इस बात से अनभिज्ञ रहा हूं । अच्छा ! अब इस वृक्ष से बातें करके अनजान बातों को जान लूं' — मैं आंखें खोलकर खड़ा हो गया ।

(असल में मैं उठा नहीं था । सपने में ऐसा लगा कि मैं खड़ा हूं) मैंने पूछा, "हे नीम के वृक्ष ! तुम मनुष्यों की भाषा कैसे जाने ? मानव के जैसे मुंह, गला, तालु, जिह्वा, दांत और ओष्ठ के बिना मनुष्यों की भाषा बोलना असंभव है न ? हम मानवों में भी जिनके

दांत गिर गये हैं उनका उच्चारण ठीक नहीं रहता। जिनके गले में घंटी नहीं वे गूंगे हो जाते हैं। ऐसी दशा में बिना मानव शरीर के तुम मनुष्यों की भाषा कैसे बोलते हो ?"

नीम के वृक्ष ने उत्तर दिया, "सुनो मानव ! मनुष्य के लिए केवल एक मुंह है । मगर मेरा सारा शरीर मुंह है । मानवीय भाषा बोलने के लिए मनुष्य जैसे मुंह आदि बाह्य कर्मेंद्रियां आवश्यक हैं। ऐसा तुम सोचते हो । साधारणतया ये आवश्यक हैं । लेकिन मैं वृक्ष नहीं हूं । मै तो मुनि अगस्त्य का शिष्य हूं । अगस्त्य मुनि के अलावा मेरी तरह तमिल भाषा का ज्ञान और किसी को नहीं ।"

नीम का वृक्ष आगे बोलता ही गया । "बीती बातें आरंभ से कहता हूं। सुनो ! ध्यान से सुनो ! अब मेरी उम्र तीस वर्ष की है। मै युवा वृक्ष हूं , तरुण हूं । पंद्रह साल पहले की बात है। वंसत ऋतु थी । रात का वक्त । स्निग्ध चांदनी चारों तरफ फैली थी। मैं जाग रहा था। साधारणतया वनस्पतियां मानवों की तरह दिन भर जागती रहती हैं, रात होते ही ऊंघने लगती हैं । पर उस रात को न जाने क्यों मुझे नींद नहीं आयी । नीला आकाश, चांद और चारों तरफ के हरे-भरे पेड़-पौधों को निहारता अलौकिक आनंद में मग्न था । तभी सोलह वर्ष के अति सुंदर मनुष्य, उससे भी अति रूप लावण्यमयी बारह साल की युवती को .... वहां उस नदी में जलक्रीड़ा करते देखा । थोड़ी देर में जान लिया कि वे दोनों साधारण मानव जाति के नहीं । उन दोनों को बिना पंखों के आकाश में उड़ते क्रीड़ा करते हुए देखा । उन दोनों के वार्तालाप से पता चल गया कि वे कौन हैं । वे दोनों थे अगस्त्य मुनि और देवी ताम्रवर्णी (ताम्रवर्णी तमिलनाडु की एक पुनीत नदी है)। साधारणतया अगस्त्य मुनि अंगूठे भर का रूप धारण लिया करते हैं । वे कामरूपी हैं । अर्थात् मनमाने रूप धारण कर सकते हैं । देवी ताम्रवर्णी भी मनचाहा रूप बना सकती थीं । इसलिए वे दोनों अति सुंदर मानव रूप धारण कर क्रीड़ा कर रहे थे। उनकी क्रीड़ा सूर्योदय तक चलती रही। उसके बाद देवी ताम्रवर्णी अदृश्य हो गयीं।"

नीम के वृक्ष ने कहा, "सुनो मानव ! दिन का प्रकाश देखते ही देवी ताम्रवर्णी ओझल हो गयी । अकेले अगस्त्य मुनि यहां आये और अब तुम जहां खड़े हो वहां लेटे योगनिद्रा में लीन हो गये । उस वक्त मैं अगस्त्य मुनि की महिमा व शक्तियों से उतना परिचित नहीं था । इसलिए यह न समझ सका कि वे योगनिद्रा में हैं। मैंने सोचा कि क्रीड़ा के कारण श्रांत होकर सो गये हैं । पौ फटे लगभग एक पहर बीत गया । तब – देखो ! तुम्हारे सामने एक इमली का पेड़ खड़ा है ? उस पेड़ के नीचे के बिल से एक नागसर्प फुंफकारें भरता हुआ उस ओर बढ़ा जहां पर मुनि अगस्त्य शयन कर रहे थे। यह देखते ही मै चौंक पड़ा। हाय ! यह विषैला सर्प कहीं इस महान तपस्वी को डस न ले । किसी तरह इनकी निद्रा भंग कर दूं तो ये अपने तपोबल से इसे वश में कर लेंगे। यह सोचकर उनको जगाने के इरादे से उन पर पत्तों की वर्षा सी कर दी । मगर उनकी नींद न खुली। इतने में सर्प ने उनके निकट आकर दो बार डस लिया। उनकी आंखें खुल गयीं। उन्होंने सर्प को बड़े

हल्के से उठाया जैसे किसी रस्सी को उठा रहे हों और अपने गले में लपेट लिया । वह सर्प भी बिलकुल शांत होकर रस्सी सा उनके गले पर लिपट गया। जहां उसने डसा था वहां से रक्त रिसता रहा । मुनि ने थोड़ी सी मिट्टी उठाकर घाव पर लगायी। देखने ही देखते घाव भर गया, यह देखकर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ । मुझे इस बात का बड़ा दुख रहा कि ऐसे महान पुरुष से दो बातें करने का सौभाग्य भी प्राप्त नहीं । मैं वाणीहीन जड़ वृक्ष बना हुआ हूं । फिर भी किसी तरह अपनी श्रद्धा प्रकट करने के इरादे से मैंने उनके चरणों पर फूल और पत्तों की वर्षा की । उन्होंने सिर उठाकर मेरी ओर देखकर कहा, 'हे नीम के वृक्ष !'

'सुनो मानव ! ध्यान से मेरी बातें सुनो !' अगस्त्य मुनि का संबोधन सुनते, अनजाने ही मेरी शाखाओं रूपी मुंह से 'मुनिवर ! क्या आज्ञा है ? ....' ऐसे तमिल के शब्द निकल पड़े । मेरा रोम-रोम पुलकित हो उठा। जन्मांतरित होने का मर्म जान लिया । अब मैं नीम का वृक्ष नहीं, मुझे मानव जन्म प्राप्त हुआ है । शरीर बदला नहीं । जड़ शरीर बदले या न बदले, क्या हुआ । मैं शरीर नहीं हूं । मैं आत्मा हूं । मैं ज्ञान हूं । मैं बुद्धि हूं । एकाएक नीम के वृक्ष के चित्त के बदले मानव की चित्तवृत्ति मुझमें आ गयी । मानव की चित्तवृत्ति न हो तो मानव की भाषा बोलने आती कैसे ? कोटि जन्मों में मुझे जो फल प्राप्त करना था, वह क्षण भर में उस महान कृपा से मुझे मिल गया । मैंने अतीव आनंदित होकर असंख्य फूल और पत्तों को उनके चरणों पर अर्पित किया । उससे हर्षित होकर मुनि ने कहा, 'हे नीम के वृक्ष ! कल जब मैं रामा नदी में ताम्रवर्णी के साथ जलक्रीड़ा कर रहा था, तुम हमें देखकर प्रसन्न हुए और हमें आशीष दिया था । मैंने यह सब ज्ञान दृष्टि के द्वारा जान लिया था । अभी थोड़ी देर पहले जब मैं योग समाधि में था, तब इस सर्प को आते देख, मेरी रक्षा करने के हेतु तुमने मुझे जगाने के लिए फूल और पत्तों की वर्षा की । तुमने मेरे प्रति जो स्नेह व श्रद्धा दिखायी है उसके बदले में मैं तुम को ऋषिबोध दिलाना चाहता हूं । इसके फलस्वरूप तुमको समस्त जीव-जंतुओं की भाषा का ज्ञान स्वाभाविक रूप से मिल जायेगा । तुम्हें समस्त जीव प्राणियों के प्रति समदृष्टि और समान प्रेम प्राप्त हो जायेगा। हां, समस्त जीवों में अपने को देखने की दृष्टि तुम्हें प्राप्त होगी । तुम जीवन मुक्त हो जाओगे।'

हे मानव ! सुनो । मुनि के आशीर्वाद से, उस दिन से उनकी बतायी समस्त शक्तियां प्राप्त करके , निश्चिंत होकर जीवन मुक्त सा अपने दिन बिता रहा हूं ।" नीम के वृक्ष की ये बातें सुनते ही मैंने उसको दंडवत प्रणाम किया । वृक्ष ने पूछा, "कहो ! तुम्हें क्या चाहिए ?" मैं बोला, "जिस प्रकार अगस्त्य मुनि तुम्हें गुरु तुल्य हैं वैसे तुम मेरे गुरु हो । उन्होंने जैसे तुम्हें जीवन मुक्त करने की कृपा की वैसी कृपा मुझ पर भी हो, यही मेरी विनती है ।"

नीम के वृक्ष ने कहा - "वैसा ही हो।"

अब तो मेरी नींद पूरी तरह से खुल गयी । मैं उठकर खड़ा हो गया । गौरैया, तोता, मैना, आदि रंग-बिरंगी चिड़ियां चहचहाती क्रीड़ा कर रहीं थीं । गिलहरियां, गिरगिट, आदि इधर-उधर दौड़ रहे थे । कौवे, बाज, चील, भ्रमर, कीट, पतंगे आदि कितने ही प्रकार के

जीव-जंतु, जैसे आलोक सागर में रंगरेलियां कर रहें हों, गुंजार करते हुए मंडरा रहे थे । कहीं आड़ में से एक कोयल युगल प्रेम का गीत गा रहा था ।

नर कोयल गा रहा था –

तू ही, तू ही, तू ही
तू ही, तू ही, तू ही
राधा ....रे

कोयल गा रही थी –

तू ही, तू ही, तू ही
राधा कृष्ण, कृष्ण, कृष्ण -रे ....

नीम का वृक्ष अपनी हरी-भरी शाखाओं को धीरे-धीरे हिला रहा था । मैंने सोचा, 'ओह! कैसा आश्चर्यजनक सपना देखा है मैंने !' तभी धूप चढ़ने लगी । मुझे भूख लगी थी । नीम के वृक्ष को नमस्कार कर मैं घर की ओर चल पड़ा ।

कांतामणी

"कांतामणी ! तुम्हारे पिता का क्या नाम है ?" दादी ने पूछा । कुएं के पनघट पर बातें हो रही थीं । गरमी के दिन थे । सुबह की बेला, आकाश पर अरुण अपनी किरणों का जाल बिछाये किलकारियां भर रहा है । सामने नील पर्वत । हरी भरी वृक्षावलियां । चलती गायें । विभिन्न लोग । कुछेक गधे । अंग्रेजी कवि शेली का कहना है कि सूर्य की रश्मियां जिस किसी वस्तु पर पड़ जाये वह आलोकित हो उठती है । सुंदर बनती है । मुझे तो हर वक्त, हर चीज सुंदर लगती है फिर भी उदय की बेला में मानव समुदाय थोड़ा चुस्त व उत्साहित दिखने के कारण प्रातःकाल की बेला में यह सारा संसार आह्लादमय दीखने लगता है ।

बगीचे के बीचोंबीच एक कुआं था। अरली फूल, नवमल्लिका के तथा गुलाब के पौधे उस बगीचे के सौंदर्य को बढ़ा रहे थे । बगीचे के आसपास की गलियों में रहने वाली स्त्रियां कुएं में पानी भरने आयेंगी ।

जिस दिन से यह कहानी शुरू होती है, उस दिन सवेरे कुएं पर कांतामणी और दादी के अलावा एक अंधे वृद्ध वहां उपस्थित थे । वे कुएं से पानी खींचकर स्नान कर रहे थे और पार्थसारथी अय्यंगार जो पुलिस की नौकरी से पदच्युत हो चुके थे अपने शेष दिन उस गांव में बिता रहे थे। संध्या समय वे राम नाम जपते थे, वहीं एक ओर खड़े दादी को अपलक निहार रहे थे ।

कुएं के पास एक खंडहर है । उसके पीछे नीम की बगिया । वहां जड़ी-बूटियां बहुत मिलती हैं । एक साधु ने मुझसे कहा था कि एक ऐसी जड़ी है जिसे खाने से भूख बढ़ेगी। मैं उसी जड़ी को तोड़ लाने के लिए बगिया में गया था । आकाश में चिड़ियां चहचहा रही थीं । कौए कांव-कांव कर रहे थे । सारे वायुमंडल में ध्वनियां नर्तन कर रही थीं । सामने स्वर्णिम प्रतिमा सी कांतामणी खड़ी थी ।

दादी ने पूछा "तुम्हारे पिता का क्या नाम है ?"

"पार्थसारथी अय्यंगार।" कांतामणी ने उत्तर दिया मानो मधुर मुरली बज रही हो। वृद्धा ने पुलिस के अय्यंगार की ओर एक बार कटाक्ष किया जिससे पार्थसारथी अय्यंगार के हाथ-पांव फूल गये । उनके पके बाल और चेहरा उन्हें नब्बे साल का बूढ़ा सा बता रहा था, पर उनका शरीर अठारह साल के सिपाही सा हट्टा-कट्टा था। सुना है, बाघ का

शिकार करने में बड़े होशियार हैं । उन्होंने स्वयं मुझसे कई बार कहा है कि फुंफकार मारते सांप से भी उन्हें डर नहीं लगता । ऐसे शूरवीर पार्थसारथी अय्यंगार को आखिर एक वृद्धा के घूरते ही पसीने-पसीने होते देख बड़ा आश्चर्य हुआ ।

वृद्धा ने पार्थसारथी अय्यंगार की ओर उंगली उठाकर पूछा, "लो ! यह जो ब्राह्मण खड़ा है, वही तुम्हारा पिता है ?"

इस पर कांतामणी दोनों हाथ आकाश की ओर बढ़ाती, आकाशवाणी को भी लज्जा देने वाली मोहक मुस्कुराहट भरती हुई बोली, " ना...ना ... ये तो कितने काले-कलूटे हैं। मेरे पिता तो बिलकुल गोरे हैं । नींबू सा दमकता रंग है उनका और ये तो बूढ़े ठहरे ! मेरे पिता युवा हैं ।"

पुलिस के अय्यंगार ने तब कांतामणी की तरफ देखकर पूछा, "तुम्हारे पिता कहां काम करते हैं ?"

"मेरे पिता शंकरनाथ कोईल के सब इंसपेक्टर हैं ।" कांतामणी बोली ।

अय्यंगार ने सिर झुका लिया । 'सब इंसपेक्टर' शब्द उनके लिए इतना भंयकर है जैसे सर्प के लिए बिजली की कड़कड़ाहट हो । इधर दादी और कांतामणी में बातें हो रही थीं।

"तुम्हारे कितने भाई-बहन हैं ?" दादी ने पूछा । कांतामणी बोली, "मेरी बहन अठारह वर्ष की है । पिछले महीने ही उसका गौना हुआ । श्री वैकुंडम में रहती है। अगले महीने मेरा गौना होने वाला है । मेरी एक छोटी बहन विवाह करने योग्य है । हम तीनों बेटियां हैं। मेरे पिता को बेटा न होने पर बड़ी चिंता है। क्या करें ? भगवान की कृपा होती तो यह दिन देखने न पड़ते । पुत्रवान हो जाते । पिताजी ने जन्मकुंडली देखी । किसी निगोड़े ज्योतिषी ने कह दिया कि मेरी मां को पुत्र न होगा । इसी को वेदप्रमाण मानकर मेरा वह बप्पा, कलमुंहा ब्राह्मण, अगले महीने मन्नार कोईल में दूसरी लड़की से विवाह करने वाला है। मुहूर्त भी देख लिया है ।"

"मन्नार कोईल में तुम्हारे बाप को लड़की देने वाले का नाम क्या है ?" दादी ने फिर पूछा ।

"उनका नाम गोविंद राज अय्यंगार है । सुना है, वे बड़े जमींदार हैं। उन्हीं की इकलौती बेटी मेरी छोटी मां बनने वाली हैं। कहते हैं, लड़की अप्सरा रंभा सी सुंदर है। सिर से पांव तक हीरे-जवाहरातों से सजी है ।"

दादी ने पूछा, "ऐसी रूपसी, धनी घराने की बेटी को दूसरी पत्नी के रूप में देने की क्या पड़ी है ?"

"उस लड़की को युवा हुए तीन साल बीत गये । उसकी मां भी मर गयी । रंग-ढंग में लड़की मेम साहिबा सी है । इसलिए अब तक उससे विवाह करने कोई वर न आया। लड़की बड़ी हो गयी है यह बात सरासर झूठ है – ऐसा कहकर मेरे पिता उससे शादी करने को तैयार हो गये । असल में मन ही मन उन्हें इसका संतोष है कि सयानी लड़की

उन्हें पत्नी के रूप में मिल रही है । आज सवेरे मेरी मां और पिताजी इस पर चर्चा कर रहे थे । हम लोग इस गांव की धर्मशाला में ठहरे हैं। यहां आये एक हफ्ता हो गया है। मेरी मां ने कहा, 'सारा गांव एक आवाज से कह रहा है कि उस मन्नारगुड़ी की लड़की को बड़े हुए तीन साल हो गये हैं।' इस पर पिताजी ने कह दिया, 'नेवर माइंड । वह छोकरी बड़ी हो गयी है, इस बात से मुझे दोगुना संतोष है । हमें धन मिलेगा। पुत्र का जन्म होगा। छोकरी भी मामूली नहीं बड़ी सुंदर है । आई डोंट केयर ए डेम एबाउट शास्त्राज। मैं शास्त्रों को तृण के बराबर भी नहीं मानता।" कांतामणी बोली ।

इन दोनों का पूरा संभाषण मैं सुन तो रहा था, मगर मेरी दृष्टि पार्थसारथी अय्यंगार पर टिकी थी । उन्हें देखकर एकाएक मेरे मन में एक विचार आया । वहां पर उपस्थित लोगों में केवल कांतामणी मेरी लिए नयी थी । पार्थसारथी अय्यंगार और वृद्धा से मैं परिचित था। वृद्धा अय्यंगार जाति की नहीं, स्मार्त ब्राह्मणी थी । गांव के मुंसिफ की बहन थी। मैंने सुना था कि युवाकाल में पार्थसारथी अय्यंगार और मुंसिफ की बहन में प्रेम हो गया था, जिसको लेकर अय्यंगार और मुंसिफ में कई बार झगड़े हुए और ऐसी एक लड़ाई में पार्थसारथी अय्यंगार की एक आंख करारी चोट लगने से फूट गयी थी। अब उन बातों की याद करके उन स्त्रियों के संभाषण को सुनते हुए मैंने वहां खड़े अय्यंगार के चेहरे के हाव-भाव को देखा। इससे एक बात स्पष्ट हो गयी ।

यह तो साफ मालूम हो गया कि पार्थसारथी अय्यंगार बुढ़िया को यह जताना चाहते हैं कि उसके प्रति इनका प्रेम अब तक ठंडा नहीं हुआ है । दहकता रहता है तथा कांतामणी जैसी रूपसियों के होते हुए भी तुम्हें वह वृद्धा ही अधिक आकर्षक व रम्य लगती है, मगर मुझे लगा कि उनके हाव-भावों में दिखावा ज्यादा और सचाई कम है।

क्योंकि जिस ब्रह्मा ने अपने ही हाथों से कांतामणी और उस वृद्धा की सृष्टि की थी, वह भी कांतामणी के सान्निध्य में उस वृद्धा से आंखें चुरायेगा । ऐसी स्थिति में पुलिस के अय्यंगार को उसकी तरफ आंख बिछाये, प्रेम-विह्वल होते देखकर, उसका ध्यान अपनी ओर खींचने की कोशिशें देखकर अपनी आंखों पर विश्वास नहीं हो रहा था।

इसमें एक और बात थी । जैसे मैं वृक्षों की आड़ से अय्यंगार को गौर से देख रहा था, वैसे बातें करते-करते वह वृद्धा और कांतामणी भी उसकी ओर छिपी दृष्टि डालती रहीं । असल में स्त्रियों की श्रवण शक्ति सर्प से भी तेज होती है और दृष्टि तो गिद्ध से भी पैनी है । इसलिए पार्थसारथी अय्यंगार के हृदय के भावों को मैंने भांप लिया था। वैसे उनके दिल की बात ताड़ ली थी, इसे उन दोनों के चेहरे से मैंने जान लिया ।

तीनों ने मुझे नहीं देखा था । मैं तो वृक्षों की आड़ में खड़ा था न ? इसलिए वे मुझे देख न पाये होंगे ।

इसी बीच वहां पर हींग का व्यापार करने वाला एक मलयाली युवक आ पहुंचा । इस लड़के की उम्र बीस वर्ष होगी । हींग का व्यापार उसका धंधा था । इसके पहले भी उसे कई बार इस गांव में व्यापार करते मैंने देखा है। उसके बारे में मैंने विशेष रूप से

कुछ जानने की कोशिश नहीं की थी । देखने में युवक मन्मत्त सा सुंदर था। सुडौल रूप, काली-काली आंखें, सुघड़ नासिका, घुंघराले केश, सिर पर चोटी । बस, उस सुंदर पुरुष को देखकर मेरा मन भी अनायास उसकी ओर आकृष्ट हुआ ।

वह मलयाली युवक कुएं के चबूतरे पर आ बैठा और अपनी प्यास बुझाने के लिए उस वृद्धा से पानी मांगा । उसे देखते ही कांतामणी एकाएक कांप उठी। यह दृश्य मेरी दृष्टि से बच न सका । उस युवक ने कांतामणी की ओर एक बार आंख उठाकर देखा। बस, कांता की कमर से टिका घड़ा धड़ाम से गिर पड़ा । कांतामणी झुककर उसे उठाती हुई कलप उठी, "हाय ! क्या करूं ! घड़ा तो छह अंगुल धंस गया । मेरी मां तो मुझे फांसी पर चढ़ा देगी – क्या करूं ?"

उसने लंबी आहें भरीं । आंचल छाती से खिसक गया । उसकी दृष्टि सामने की पर्वतमाला पर टिक गयी ।

यह कांतामणी उस मलयाली युवक पर मोहित हो उठी है, यह तो दूर से ही मैंने जान लिया । बाद में पूछताछ करने पर मालूम हुआ कि कांतामणी के पिता पार्थसारथी अय्यंगार बहुत दिनों तक केरल राज्य में नौकरी करते रहे, और किशोर उम्र में ही कांतामणी से उस युवक का प्रेम हो गया था जो दिन-ब-दिन फलता-फूलता रहा । लेकिन सब इंसपेक्टर महोदय ने धन के लोभ में पड़कर कदलापुरम् जमींदारी के दीवान तथा अवकाशप्राप्त डिप्टी कलेक्टर कोलमपाट्टू श्रीनिवासचारी से, जिसकी उम्र पचपन वर्ष थी, अपनी बिटिया की शादी कर दी थी । कांतामणी उक्त श्रीनिवासचारी के साथ जीवन बिताने के लिए सहमत न थी। ये सारी बातें मुझे बाद में ही मालूम हुईं ।

अच्छा ! अब उस दिन कुएं के पनघट पर जो कुछ घटित हुआ उसे सुनाता हूं ।

कांतामणी घड़े को कमर पर टिकाये – "हाय क्या करूं ? मेरी अम्मा गाली देगी।" ऐसे रोती-कलपती चली गयी । लेकिन वह सीधी उस धर्मशाला में न गयी जहां उसके मां-बाप थे । उल्टी-सीधी पश्चिम दिशा की ओर चली जहां पर एक नदी बहती थी । प्यास बुझाने के बाद वह मलयाली युवक भी नदी तट की ओर ही चला। इतने में संध्यावंदन करने का समय काफी कट गया था, इसलिए मैं सीधे घर चला आया । उस दिन शाम को गांव के पुरोहित सुंदर शास्त्री जी मेरे यहां आये । आते ही वे फट पड़े – "सुना आपने ! गजब की बात हो गयी । गजब की बात !"

मैं बोला, "क्या हुआ ? पहले बात तो बतायें, फिर चीख-पुकार मचायें तो अच्छा होगा।"

"धर्मशाला में शंकरनादन कोईल से आये सब इंसपेक्टर गोविंदराज अय्यंगार ठहरे हैं न ? उनकी एक बेटी है। सुना है, वह लड़की बड़ी लावण्यवती है । ऐसी सुंदर है कि रंभा, तिलोत्तमा आदि अप्सराओं को इसका पैर छूना होगा । उसका नाम है कांतामणी । .... हाय .... नाम लेते ही दिल उछल पड़ता है ..... कैसा रसीला नाम है ? कांतामणी, कांतामणी ... "

सुंदर शास्त्री जी इस तरह कांतामणी के रूप-लावण्य का वर्णन करते ही रहे कि इतने में मैंने बीच में टोका, "अच्छा ! कहिये आगे क्या हुआ ?"

"आज सुबह से उसे ढूंढ़ रहे हैं, मगर पता न चला । न मालूम, वह कहां चली गयी। उसी शाम अम्बा समुहम से तार आया कि कांतामणी ने एक मलयाली युवक के साथ गिरजाघर में जाकर शादी कर ली है ।"

कुछ दिनों के बाद एक और आश्चर्यजनक घटना घटी । अवकाशप्राप्त, पके सिर वाले पार्थसारथी अय्यंगार और कुएं के पनघट पर उनकी प्रेमविह्वल दृष्टि का पात्र बनी वह वृद्धा दोनों रंगून भाग गये । यह भी सुना कि उस विधवा वृद्धा ने अपने बाल बढ़ा लिये और अय्यंगार को एक नाट्टु कोट्टै चेट्टियार के पास नौकरी मिली है तथा दोनों पति-पत्नी बने बड़े आनन्द के साथ अपने दिन बिता रहे हैं ।

उज्जयिनी

सम्राट विक्रमादित्य ने अपनी प्रिया श्रीमुखी से कहा, "प्रिये ! हमने शाक्त धर्म की दीक्षा ली है। मेरी शक्ति तुम हो। तुम मर जाओगी तो मै भी चिता पर चढ़ जांऊंगा।" तब वह बोली, "उज्जयिनी की महाकाली की कृपा से आपकी उम्र हजार वर्ष है । आप चिरायु हैं। वैसे मैं भी नौ सौ नौ साल तक जिंदा रहूंगी ।"

"तब तो मेरी भी उम्र नौ सौ नौ वर्ष होगी।" विक्रमादित्य ने लंबी आह भरी ।

श्रीमुखी बोली, "मेरे कांत ! तुम मेरे पुत्र हो । मेरी बात मान लो । धर्म नारी द्वारा प्रतिष्ठित हुआ है। पूजा, तपस्या, व्रत, उपवास, गृह, अन्न, आहार, विद्यालय सब कुछ नारी द्वारा प्रदत्त है। नारी अपने में आधी अर्थात् अर्द्धांगिनी है ऐसा न मानकर, वह अपने अधीनस्थ रहे, मगर उसे अपना एक हिस्सा न मानूंगा, न प्रेम करूंगा, अपना न समझूंगा – ऐसा पुरुष चिरकाल से कहता आ रहा है। नारी इसी का प्रतिशोध लेनी है। पुरुष से प्रतिशोध लेकर स्वयं उसी दुख में मर मिटती है ।

"शिव और शक्ति के समान नारी को जब पुरुष अर्द्धांगिनी स्वीकार करता है, तभी पुरुष को शक्ति प्राप्त होती है । कलियुग के अंत में यह पूर्ण रूप से सिद्ध होगा।"

"तो हमारी देवी महाकाली का नाम क्या होता है?" विक्रमादित्य ने पूछा।

श्रीमुखी कहती है, "महाकाली का नाम नित्य कल्याणी उज्जयिनी है ।"

"कौन इसके साक्षी हैं ?" विक्रमादित्य ने पूछा ।

"देवतागण साक्षी हैं। पंचभूत साक्षी हैं । मानव, पशु, पक्षी, कीट आदि जीव-जंतु इसके साक्षी हैं "। 'अच्छा' कहकर विक्रमादित्य मौन हो गया । अगले दिन दोनों मंदिर गये। वहां पर देवी के मुकुट पर हीरककणों में अंकित था 'नित्य कल्याणी उज्जयिनी'। दोनों यह देखकर आनंदित हो उठे और देवी की पूजा की । विक्रमादित्य ने अपने राजमहल में स्वर्ण स्तंभ गाड़कर उसमें खुदवाया, 'नारी का संरक्षण करना आंखों के संरक्षण के समान है । नारी की आंखें होती हैं । नारी माता है।'.....

इस कथा का उल्लेख शाक्त धर्मशास्त्र में है । लोकमंगल की भावना से प्रेरित होकर उसे यहा बता रहा हूं ।

सागर

एक दिन संध्या के वक्त वेदपुरम के सागर के तट पर, एकांत में जा लेटा था। दिन में बड़ी दूर तक पैदल घूमता रहा जिससे थकान के मारे सो गया था । तब जो सपना देखा, उसी का वर्णन करता हूं ।

सागर के मध्य एक द्वीप है। उसमें एक विशाल भव्य राजमहल, उसके आसपास सुंदर फुलवारी, उसमें कलकल बहते दो झरने । झरने के पास हरी-भरी घास पर सोलह साल की कन्या बैठी थी। मुझे देखते ही उठकर राजमहल की तरफ भाग गयी। मैंने उसका पीछा किया । मार्ग में एक बड़ा सांप लेटा था। मुझे देखते ही फन फैलाये मुझे काटने को आया। मैं दौड़ा और वह मेरा पीछा करने लगा । भागते-भागते मैं समुद्र तट पर पहुंचा। सांप मेरे पांव के निकट आ गया तो मैं समुद्र में कूद पड़ा । समुद्र में बवंडर के झोंके आलोड़ित सागर की लहरों को तीन ताड़ वृक्ष की ऊंचाई तक ऊपर उछाल रहे थे और दूसरी लहर उतनी ऊंचाई से नीचे गिर रही थी। किसी तरह उस लहर से बच गया । बड़ी देर के बाद लहरें शांत हुई । मैं तैरता ही रहा । लेकिन कहीं किनारा ही न मिला । हाथ इतने थक गये कि मैं तैर न पाया । अपने कुल-देवता का नाम जपने लगा । तभी एक बूढ़ा नाव चलाता हुआ मेरे पास आया। उसे देखते ही मैं गिड़गिड़ाया, "भैया ! मुझे अपनी नाव पर चढ़ा ले । बवंडर ने मुझे बुरी तरह थका दिया है ।" बूढ़े ने मुझे अपनी नाव पर चढ़ा लिया। हमारी नाव चलती रही । काफी देर तक हम नाव चलाते रहे, मगर कहीं किनारा न दिख पड़ा । मैंने पूछा, "भैया ! बताओ – पार पहुंचने में और कितना समय लगेगा ?" बूढ़े ने थोड़ा सत्तू का आटा और एक घूंट पानी पीने को दिया । मैं विश्राम लेता हुआ, झपकी लेने लगा (अर्थात् सपने में नींद)। जब आखें खुलीं तो देखा - किनारा नजर आ रहा था। बूढ़ा मुझे किनारे पर उतारकर, फिर से नाव चलाते समुद्र की तरफ गया ।

मैंने उससे बहुत कुछ पूछा । लेकिन उसने किसी सवाल का उत्तर न दिया । उसको आंखों से ओझल होने तक देखता ही रहा, फिर द्वीप की ओर बढ़ा । थोड़ी दूर चलने पर वही राजमहल दीख पड़ा। वही फुलवारी, झरने, झरने के किनारे हरी घास पर वह लड़की पूर्ववत बैठी थी । मुझे देखते ही वह फिर से राजमहल की ओर भागने लगी । इस बार मैंने उसका पीछा न किया। अगर उसका पीछा करता तो मार्ग में वह सांप पड़ा मिलेगा, इस ख्याल से आंतकित होकर समुद्र की तरफ भागता गया । भागते-भागते कई बार मुड़कर

देखता रहा कि कहीं सांप मेरा पीछा तो नहीं कर रहा। किनारे पर पहुंचते ही सोचा कि किसी तरह इस द्वीप से निकल जाना चाहिए। साथ ही विचार हुआ कि वह लड़की कौन है, यह जान लेने के बाद उस द्वीप से जाना है। मैं बड़ा थका हुआ था और भूख लग रही थी इसलिए चारों तरफ देखने लगा कि कहीं कुछ खाने को मिलेगा क्या ? किनारे-किनारे बहुत दूर चलता रहा कि इतने में सामने एक कुटिया दिखायी दी । मैं कुटिया के अंदर गया। कुटिया में विघ्नेश्वर जी की एक मूर्ति रखी हुई थी । उस शिला-मूर्ति के सामने एक पत्तल में भात, तरकारी, खीर, पकवान आदि परोसे रखे थे । पास में एक घड़े में पानी, फूल, चंदन, इत्यादि पूजा की सामग्रियां रखी थीं । भूख के मारे सोचा कि परोसा हुआ भोजन खा लूं । फिर विचार किया कि पिछले जन्म में न जाने कौन सा पाप किया था कि इस निर्जन द्वीप में मारा-मारा फिर रहा हूं । अब पेट की आग बुझाने, पूजा के लिए रखी वस्तुओं का अपहरण करूं तो पाप का बोझ और बढ़ेगा । इसलिए निश्चय कर लिया कि ऐसा काम कभी नहीं करूंगा । लेकिन भूख की पीड़ा सही न गयी । सोचा, खुद पूजा करके नैवेद्य चढ़ाकर उसे खा लूं । स्नान करने के लिए स्थान की तलाश में बाहर आया। थोड़ी दूर जाने पर एक छोटा सा झरना दिखाई दिया । उसमें स्नान कर, संध्यावंदन आदि नित्य नैमित्तिक कर्मो से निवृत्त होकर कुटिया में लौट आया तो आश्चर्य ! अब तो कुटिया में केवल विघ्नेश्वर की मूर्ति थी । भात, तरकारी, खीर, बड़ा, फूल चंदन कुछ नजर न आया। मेरी निराशा का क्या कहना ? हे विघ्नेश्वर जी ! वेदपुरी लौटते ही तुम्हारी सेवा में तैंतीस नारियल चढ़ाऊंगा । इस आफत की घड़ी में मेरी मदद करो, ऐसी प्रार्थना की ।

मेरा सपना यहीं पर टूट गया । कुछ ठीक-ठीक याद न रहा । कई प्रकार की गड़बड़ियां हुईं । लगा मैं फिर से समुद्र में तैर रहा हूं और युग प्रलय सा कुछ हो रहा है । मेरे हाथ-पैर फूल गये। आंखों में अंधकार छा गया। होश-हवास न रहा । लगा, हवा के झोंके सागर को बूंद-बूंद करके छितराने पर तुले हैं । तूफानी लहरें मेरे शरीर को गेंद के समान उछाल रही थीं । मैने फिर से कुलदेवी शक्ति का स्मरण किया और विघ्नेश्वर से प्रार्थना की — हे विघ्नेश्वर जी ! मुझे वेदपुरी के किनारे पर पहुंचाओगे तो तीन हजार तीन सौ नारियल तुम्हारे नाम पर तोड़ूंगा । मेरी रक्षा करो, मेरी रक्षा करो । थोड़ी देर में तूफान शांत हो गया । एक नाव मेरी तरफ आती दिखाई दी। नाव का सौंदर्य वर्णनातीत था । मयूर आकार की, सुनहरे रंग की वह नाव जैसे कोई राजहंस मस्त चाल से तैरता ... रहा हो मेरे निकट आयी तो देखा एक वीर योद्धा उसमें आसीन था। अग्नि के तेज पुंज के समान उसका चेहरा दमक रहा था। नाव को देखते ही मैंने हाथ जोड़ दिये । उसने नाविक को आज्ञा दी कि मुझे भी नाव में ले ले । नाविक ने मुझे चढ़ा लिया । नाव पर पांव रखते ही मेरी शारीरिक एवं मानसिक क्लांति मिट गयी । अपनी ओर देखा तो मैं स्वयं राजसी पोशाक में था । हां, मैं सोलह साल के किशोर-सा लग रहा था । नाव पर जो योद्धा बैठा था, उसके हाथ में शूल था ।

तभी मेरी आंखें खुलीं । देखा, वेदपुरी का समुद्री किनारा है । संध्या की बेला बालुकामय तट पर मैं लेटा हूं ।

मुझे अपनी आंखों पर विश्वास न हुआ । खूब आंखें मलकर देखा । मालूम हुआ कि वह द्वीप, तूफान, सब कुछ सपना है । उस द्वीप में मुझे देखते ही जो किशोरी भाग गयी थी मानो वह मेरे सामने खड़ी है । साथ ही नाव पर दिखाई दिये वीर योद्धा की सूरत तैरती आयी । .... आखिर घर लौट आया ।

वेदपुरी में 'मौन स्वामी' .... नामक एक साधु मेरे साथ रहते हैं उनसे अपने सपने की सारी बातें बताकर पूछा कि वह किशोरी कौन थी ? उन्होंने बताया, "किसने तुम्हारी रक्षा की, यह तो तुम जान न पाये । उस किशोरी को तुम से प्रेम हो गया था । दूसरी बार नाव में जो योद्धा दिखाई पड़ा उसके हाथ में एक शूलायुध को देखा था न ? वही तुम्हें किशोरी सी लगी । चिंता के सागर में जिस किशोरी ने तुम्हें डुबा दिया उसी ने फिर शूलायुध का रूप लेकर तुम्हारी रक्षा की है ।"

मैंने जान लिया कि शक्ति ही शूलायुध है । वही हमारी सच्ची सहचरी है। यथाशीघ्र एक शुभ दिन निकालकर वेदपुरी में स्थित विघ्नेश्वर जी को तीन हजार तीन सौ नारियल चढ़ाने हैं, ऐसा निश्चय कर लिया है ।

तलवार का युद्ध

मार्गशीर्ष महीने का अंतिम सप्ताह है । कड़ी सर्दी लगती है। वेदपुरी समुद्री किनारे की बस्ती है न, इसलिए ठंड ज्यादा लगती है । एक दिन रात को सर्द हवा से आतंकित होकर स्वास्थ्य संबंधी नियमों की परवाह न करता हुआ मैं अपने कमरे की चारों खिड़कियों को बंद करके लेटा था । /

पौ फटने को अभी दो याम होंगे कि एकाएक मेरी नींद खुल गयी । इसका कारण जाड़ा था। हाड़ कंपा देने वाली सर्द हवा चली । उत्तर दिशा की ओर वाली खिड़की चलती हवा से स्वयं खुल गयी । उठकर उसे बंद करने की इच्छा होने पर भी आलस्य ने मुझे उठने न दिया । ऐसी ठंड में कौन रजाई से बाहर आकर खिड़की बंद करे ? मन ही मन अकुलाता हुआ लेटा रहा । उठा नहीं । इतने में जोर की बारिश आ गयी । धड़ाधड़ पानी बरसने लगा । सर्दी के मारे दांत बज रहे हैं ।

अंत में तंग आकर खिड़की बंद करने के लिए उठा।

तभी एक पंडा शंख बजाता, गाता आया । मार्गशीर्ष महीने में हर साल एक वल्कुवन, अर्द्धरात्रि की बेला में 'तिरुवाचकम्' के पद गाना, शंख बजाना, शेखंडी माग्ना (एक प्रकार का बाजा) हुआ वेदपुरी की गलियों में घूमा करता । वही इस साल भी आया है, यह सोचकर पल भर मैंने उस ओर ध्यान न दिया। इतने में किसी के गाने की मधुर आवाज कानों में आयी । ओह ! यह तो वल्कुवन की आवाज नहीं, कोई नयी आवाज लगती है – यह सोचकर सर्दी का ख्याल किये बिना मैं थोड़ी देर खिड़की के पास खड़ा रहा । बाहर जोरों की वर्षा हो रही है। कमरे के अंदर मेरे हाथ-पांव ठिठुर रहे हैं ।

वह पंडा तो जैसे वसंत काल की मनोहर संध्या काल में कोई राजकुमार पुष्प-वाटिका में बयार का सेवन कर रहा हो वैसे बरसते पानी में बड़ी मस्ती से पैदल जा रहा है । इतना ही नहीं, बड़े उत्साह से 'तिरुवाचकम्' गा रहा है ।

"पूसुवदुम वेण्णीरु, पूणबदुवुम पोंगरवम्,
पेसुवदुम तिरुवायाल, मरै पालूम कानेडी ।"

इस पद को जिस राग से उसने गाया था वह अब तक मेरी स्मृति से गया नहीं है। वह मानवीय गायन सा न लगा, 'देवगान सा' लगा। ऊंची आवाज में पुकारा, "हे पंडे ! जरा रुको !" वह रुक गया । मैंने पूछा, "ऐसा लगता है कि पिछले साल सुप्रभाती गान

गाने जो आया था, तुम वह तो नहीं हो । बताओ तुम हो कौन ?"

उत्तर आया "पिछले साल के गायक का बेटा हूं । तिरुच्चाकल गाया था ।"

समझ गया, आदमी जरा ढीठ है, पूछा "तुम्हारा नाम क्या है ?"

"नेट्टै माडन।"

"अच्छा ! अब जा सकते हो।"

वह दो कदम चला, फिर लौटकर पूछा, "ऐय्यरे, आपका क्या नाम है ?"

"मेरा नाम कालिदास है ।"

"ओहो ! तो पत्रिकाओं में कहानी लिखने वाले कालिदास आप ही हैं ?"

ओह ! यह पत्रिका भी पढ़ता है क्या ... ऐसे आश्चर्यचकित होकर उससे पूछा, "भाई नेट्टै माडन ! किसने तुम्हें संगीत की शिक्षा दी है ? अब तक तुम कहां थे ?"

नेट्टै माडन कहने लगा, "ऐय्यरे ! मैं बरसाती झड़ी में खड़ा हूं । आप कमरे के अंदर से बातें कर रहे हैं । जरा छत से नीचे उतर आइये न ! बाहरी चबूतरे पर बैठकर बातें करें । बहुत दिनों से मैं भी आप से कुछ प्रश्न पूछना चाहता था । उतर आयेंगे न ?"

अरे ! यह कौन ? बड़ा विचित्र पुरुष सा लगता है । ऐसे आश्चर्य करते हुए मैंने नीचे उतर आने की बात मान ली । वह भी सीढ़ियां चढ़कर आया और चबूतरे पर बैठ गया। नीचे जाते वक्त मैं एक लालटेन जलाकर ले गया था । वह भी लालटेन लिये हुए था । चबूतरे पर बैठते ही हम दोनों ने एक-दूसरे पर भरपूर दृष्टि डाली । उसका सिर साफ मुंड़ा हुआ था । इकहरा शरीर । मगर गठा बदन । मांसलता नहीं । खुली छाती, सिर्फ कमर पर धोती बंधी थी । खुला शरीर भीगा-भीगा था । मगर उसने उसे पोंछा तक नहीं । उसके चेहरे पर ठंड का कोई प्रभाव न था । उसे देखते ही न जाने क्यों मुझे हंस पक्षी की याद आयी । हां, जरा देर पहले, बरसते पानी में चलते उसे देखते वक्त भी यही सोचा था कि 'यह क्या ! हंस पक्षी सी मस्त चाल भर रहा है ।' ... हां ... अब उसे देखते वक्त भी कुछ ऐसा ही विचार आता है। मंदिर में भगवान का हंस वाहन । कितना शांत, कितना गंभीर व सुंदर लगेगा या वैसा ही इसका मुखमंडल शांत, गंभीर और आकर्षक है ।

मैंने कहा, "कहा था, बहुत दिनों से मुझसे कुछ पूछना चाहते थे। अच्छा अब बताओ, क्या पूछना है ?"

नेट्टै माडन बोला, "आपसे कुछ पूछना चाहता था। ऐसा नहीं कहा था । बात बतानी है कि मैं आपसे संभाषण करना चाहता हूं । अच्छा अब आप ही कुछ पूछिये। मैं जवाब दूंगा । संभाषण का यही ढंग मुझे पसंद है ।" यह कैसा संकट आ पड़ा – यह सोचकर अपने पूर्व प्रश्नों को दुहराया । "इतने दिनों से कहां थे, संगीत कहां सीखा" इत्यादि।

"अरिवूर के वैणिक रघुनाथ भट्टर के पुत्र आंजनेय भट्टर से मैंने संगीत की शिक्षा ली । अब तक वहीं रहा ।" नेट्टै माडन ने कहा ।

"भैया नेट्टै माडन ! तुम तो जाति के वल्कुवन हो ! रघुनाथ भट्टर, आंजनेय भट्टर आदि नाम सुनने से लगता है कि वे ब्राह्मण हैं । तुम्हारी जातिवाले जब ब्राह्मण के पास गये तो

लोगों ने शोर तो मचाया होगा न कि छूत लग जायेगी ? ऐसी हालत में तुमने उनसे संगीत की शिक्षा कैसे ली ?"

"यदि आप अपने प्रश्न का उत्तर चाहते हैं तो मुझे अपनी कहानी को शुरू से सुनाना होगा। आप में सुनने का धैर्य है न ?"

"सुनूंगा" — मैंने अपनी सहमति प्रकट की ।

"छब्बीस साल पहले वेदपुरी में मेरा जन्म हुआ । जब मैं चार साल का था, तभी दरिद्रता के कारण मेरे पिता ने मुझे एक सर्कस कंपनी के हाथ बेच दिया । उस दिन कंपनी में अति रोमांचकारी खेल दिखाकर मैंने बड़ा नाम कमाया। मेरी उम्र बारह साल की रही होगी, तब मैं अरिवूर गया । एक महाराष्ट्रीय ब्राह्मण सर्कस कंपनी के मालिक थे, उन्हें मुझसे बड़ा प्रेम था । अरिवूर पहाड़ी प्रदेश में एक बड़े जमींदार की राजधानी है । उस शहर में हमारी कंपनी ने दो महीने खेल दिखाया। कंपनी के मालिक रायजी की काफी उम्र हो चुकी थी । इसलिए सोचा कि शीघ्र ही कंपनी को बंद करके, पंढरीपुर जायें और वहां एक मकान खरीदकर अपने शेष दिन ईश्वर के ध्यान में लगा दें । जमींदार से उसकी घनिष्ठ मित्रता हो गयी थी । जमींदार तलवार चलाने में प्रवीण एक युवा अंगरक्षक चाहते थे। मेरे मालिक ने मेरी सिफारिश की । इसी बीच में मेरे पिता और कंपनी के मालिक के बीच पत्र-व्यवहार हो रहा था। पिताजी कई बार मुझसे मिलने आया करते थे। आखिर जमींदार मुझे राजमहल में ही खिला-पिलाकर, बेटा सा पालते रहे। वहीं उस जमींदार के गायक आंजनेय भट्टर के पास मैंने संगीत की शिक्षा ली । योगाभ्यास करना सीखा । तलवार चलाने में बड़ा नाम पाया । मुझे छह भाषाएं आती हैं। गाना, नाचना, मृदंग बजाना, घुड़सवारी, हाथी सवारी, ऐंद्रजालिक खेल, मल्लयुद्ध .... आदि बहुत सी विद्याएं मैं जानता हूं ।"

इतने में पौ फट गयी । सूर्योदय के उज्ज्वल प्रकाश में वह काफी सुंदर व रूपवान लगा ।

मैंने उसकी ओर देखकर कहा, "आज सवेरे का भोजन मेरे यहां कर लो । तलवार चलाने की अपनी कुशलता थोड़ी मुझे भी दिखा दो ।" वह राजी हो गया । फिर बोला, "तलवार चलाने में मेरी बराबरी करने वाला इस शहर में केवल एक व्यक्ति है । मैं घर जाकर, तलवारें लाते समय, उन्हें भी साथ ले आऊंगा ।"

नेट्टै माडन चला गया, फिर लगभग पांच बजे लौटा । सोचा था कि वह नंगी तलवार अर्थात असली तलवारें ले आयेगा, मगर वह तो दो धारहीन सर्कस के काम की तलवारें ले आया। बोला, "अपने प्रतिद्वंद्वी को ले आने का जो वादा किया था न ! उस वादे को निभाने की खातिर उस आदमी को बहुत ढूंढ़ा, मगर वह न मिला, इसलिए आज अकेले ही तलवार के करतब दिखाऊंगा ।" मैंने बात मान ली और उसे कॉफी इडली लाकर दी। वह खा ही रहा था कि इतने में योगेश्वर महाराज कुळ्ळ स्वामी जी वहां आये । उन्हें देखते ही नेट्टै माडन उठ खड़ा हुआ और बोला, "जय राम ! राम महाराज !" उन्होंने भी 'राम-राम' कहा । फिर दोनों मलयालम में बड़ी देर तक बातें करते रहे। मलयालम मेरी समझ में

नहीं आती थी, इसलिए मैंने उनके संभाषण की ओर अधिक ध्यान न दिया । कुव्ळ स्वामी जी मेरे लिए गुरु तुल्य थे, इसलिए उनके लिए दुकान से केला मंगवाया और उनको दूध और केला दिया । दोनों ने खाया । फिर पान की तश्तरी हाथ में लिये बोला, "चलिये, हम छत पर पूजा मंडप में चलें।" ऐसा कहकर उनको ऊपर ले आया। दोनों ऊपर आये। उन दोनों को झूले पर बिठाकर पान खिलाया । मुंह में डालने के पहले नेट्टै माडन बाहरी आंगन से एक कुर्सी ले आया। उस पर चढ़कर झूले के तख्त और लोहे की जंजीर को दीवार के पास एक ओर रख दिया । फिर मेरी तरफ देखकर बोला,"मेरे बराबर तलवार चलाने वाले इस शहर में एक ही हैं, ऐसा कहा था न ? वह और कोई नहीं, यही स्वामी जी हैं।" उसने स्वामी जी की ओर संकेत किया । आश्चर्य के मारे मैं भौंचक्का रह गया।

क्षण भर में दोनों तलवार उठाकर चलाने लगे । बड़ी देर तक पैंतरे बदल-बदलकर वे लड़ते रहे। मैं चकित सा रह गया। इतने अद्भुत ढंग से वे तलवार घुमा रहे थे पर किसी को चोट न लगी । मगर मेरा दिल धक्-धक् करता रहा, कि कहीं किसी का सिर न उड़ जाये ।

आखिर दोनों ने तलवार नीचे रख दी । न थकान थी, न श्रम । दोनों पूर्ववत मलयालम में बातें करने लग गये । थोड़ी देर बाद नेट्टै माडन विदा लेकर चला गया । स्वामी जी ने मेरी तरफ देखकर कहा, "भैया कालिदास ! यह नेट्टै माडन राजयोग द्वारा चित्त को वश में कर चुका है । तलवार के युद्ध द्वारा योग सिद्धि का मार्ग दिखाया है भगवान ने । इस भूमंडल में इसकी बराबर तलवार चलाने वाला कोई नहीं । लेकिन यह अहिंसाव्रती महायोगी है। अपने को काटने आते सर्प को भी नहीं मारना – ऐसा व्रत लिया है। महान होने के कारण घातक अस्त्र व नंगी तलवार को यह हाथ से नहीं छूता । लेकिन इस विद्या को शरीर को वश में करने के हठयोग के आसनों में एक मानकर तुम जैसे रसिक जनों के लिए, सर्कस की नकली तलवार लिये अपनी अद्भुत कुशलता प्रदर्शित करेगा । हमारे शहर में, वल्कुवल कुल में ऐसे महान व्यक्ति को पाकर तुम्हें आश्चर्य होगा । मगर विस्मित न होना । हिंदुस्तान के साधु-संतों को आदर की दृष्टि से देखना । काषाय धारण किये हों तो हाथ जोड़ना । किस बिल में कौन सा सांप होगा, कौन जाने ? तुम्हें तो और महान विभूतियों का दर्शन मिलता रहेगा ।"

गरिमामय हिंदुस्तान की महिमा का स्मरण करते हुए, स्वामी जी की तरफ देखकर हाथ जोड़े और बोला, "वंदेमातरम्।"

'जीओ' का आशीर्वाद देकर स्वामी जी ने विदा ली।

द्वितीय खंड - नारी

नारी

वेदपुरी की धर्मवीथी में पंडित ब्रह्मराय अय्यर नामक एक ब्राह्मण रहते हैं । ये शाक्त संप्रदाय के हैं । शाक्त पूजक मधु-मांस का सेवन करने वाले होते हैं, लेकिन पंडितजी ऐसा नहीं करते । ये तो कट्टर निरामिष भोजी हैं । आप बकरी को मांस खिला सकते हैं, मगर इनको नहीं । अंग्रेजी, फ्रेंच दोनों भाषाओं के पंडित हैं । संस्कृत का भी थोड़ा ज्ञान है। भगवत् गीता, वाल्मीकि रामायण, कुमारसंभव – तीनों ग्रंथों का अध्ययन किया है । वेदांत दर्शन में भी रुचि है इन्हें । जहां भी कथा, पुराण वाचन, व्याख्यान हो पंडितजी अवश्य जाते। लेकिन प्रायः मन मसोसकर लौट आते । फिर तो लगभग एक महीने तक उक्त पौराणिक या कथा-वाचक की कही बातों को लेकर मित्र मंडली में विचार-विमर्श करते रहते । कहते, "पुराने जमाने में हिंदुस्तान के लोग बुद्धि एवं ज्ञान के क्षेत्र में अति उन्नत दशा तक पहुंचे थे । निकट भविष्य में फिर से इस देश की उन्नति होने वाली है – इसमें कोई संदेह नहीं लेकिन ... आज की दशा कितनी निराशाजनक है । ये लोग जो पौराणिक बने कथा-पुराण बघार रहे हैं उनमें नब्बे प्रतिशत रसोइया बनने लायक हैं । क्लर्की छोड़कर उपदेश झाड़ने निकल पड़े हैं उल्लू कहीं के । यही अब झंझट और मुसीबत की बात है । ओह ! कैसा सिर दर्द है यह ! हाय ... आज – इस घड़ी में देखता हूं – हिंदुस्तान के लोग निरे मूर्ख, गंवार बने बैठे हैं। हमारी कौम की बुद्धि सड़ गयी है । इनकी अक्ल पर दीमक लग गयी है । हिंदुस्तान के लोगों की इस दुर्गति पर सोचते वक्त मेरा खून खौल उठता है । पटकोनिया देश में भी इतने फीसदी लोग इतने बेवकूफ व खूसट बने न रहते ।" पंडित्जी इस तरह अपने देशवासियों की बुद्धि को धिक्कारते रहेंगे ।

उक्त ब्रह्मराय जी को तमिल भाषा का भी थोड़ा-बहुत ज्ञान था । यूरोप के कई शास्त्र-ग्रंथों को तमिल में लिखा है। कभी-कभी कविताएं भी लिखते । ये कविताएं न उत्कृष्ट कोटि की थीं, न घटिया दर्जे की । मामूली ढंग से पढ़ी जा सकती थीं । इन्हें संगीत का बड़ा ज्ञान था मगर गाना न आता था । गला सुरीला न था । ताल में तो बड़े निपुण थे। बड़े-बड़े मृदंगबाज भी उनसे आतंकित थे। इस गली में बोलते, तीसरी गली में इनकी आवाज गूंज उठती । दोपहर स्कूल का काम पूरा होते ही सीधे घर आ जाते, और शाम को छह से लेकर आठ बजे तक अपने घर के चबूतरे पर मित्रों के साथ बातें करते, अर्थात गाते रहते । फिर भोजन करने जाते । खाकर हाथ सूखने के पहले, चबूतरे पर आ जाते और शोर मचाने लग जाते । इसलिए अगल-बगल में रहने वालों ने इनके चबूतरे का नाम 'गर्जन

पाठशाला' रख दिया है । रोज चार-पांच व्यक्ति इस 'गर्जन पाठशाला' में उपस्थित होते, और उनका गरजना सुनते रहते । वे श्रोतागण अब तक कैसे बहरे न हो गये, इस बात पर बहुतों को आश्चर्य है ।

पंडितजी से मेरी मित्रता थी । 'गर्जन शाला' में उनकी बातें सुनने मैं अक्सर जाया करता था । लेकिन उनकी इस बात को न मानता था कि हिंदू लोग निरे मूढ़ हैं । अलावा इसके, कई बातों में उनके विचार मुझे न्यायसंगत लगे ।

चार दिन पहले, इतवार के दिन, शाम को बूंदा-बांदी हो रही थी। इसलिए मैं बाहर घूमने नहीं गया, बल्कि 'गर्जन शाला' में पहुंचा । वहां पंडितजी जोश-खरोश के साथ गरज रहे थे । श्रोताओं की सूची इस प्रकार है :

1. वीरासामी नायक्कर – हाथीनुमा शरीर । सरकारी नौकरी । उम्र तैंतीस है, लेकिन इतनी उम्र में सिर पर चांद निकल आया है। जीवन का व्यावहारिक ज्ञान है, कम बोलते हैं । गुस्सा आते वक्त थोड़ी सी सुंघनी उठाकर नासिका में भर लेते, बस, और कुछ नहीं।

2. कोंकण भट्टर – ये पेरुमाल (विष्णु भगवान) मंदिर के पुजारी थे, साढ़े सात फुट लंबे। इनको जो चाहे गाली दे सकता है, धोती पकड़कर खींच सकता है । वीरासामी नायक्कर हर पंद्रह मिनट पर इनके सिर पर मुक्का मारते रहें, फिर भी भट्टर को कभी गुस्सा न आता। सुना है, इनकी जन्मपत्री में क्रोधी स्वभाव के कर्ता के ग्रह का योग नहीं है ।

3. नारायण चेट्टियार – धनी आदमी हैं । नाटा कद । रुपयों के लेन-देन का धंधा करते हैं अर्थात् महाजनी, और गर्जन शाला की हाजिरी, बस इन दो कार्यों के अलावा किसी और काम पर ये ध्यान नहीं देते । हर हफ्ते शुक्रवार के दिन विघ्नेश्वर के मंदिर में जाया करते हैं। इसके अलावा कहीं बाहर नहीं जाते । लोग इनको अंतःपुर का चेट्टियार कहते हैं ।

4. गुरुसामी भागवतर् – संगीत के विद्वान हैं । बालकों को संगीत और बाजे बजाना सिखाते हैं । आवाज भारी है ।

इस गोष्ठी में, मैं जा मिला तो पुरोहित ब्रह्मराय थोड़ा खुश होते हुए बोले, "आइये, आइये .... आपके प्रिय विषय की ही चर्चा हो रही है ।"

"कौन सा विषय है ?" मैंने पूछा ।

"नारी संबंधी बात है ।"

"नारी संबंधी बात ? अच्छा ! चर्चा होने दीजिये।" पंडितजी ऊंची आवाज में बोलने लगे यानी गरजने लगे ।

"मैंने तो अब तक कहा था, उसे संक्षिप्त रूप में शक्तिदासव जी को दोबारा सुनाऊं तभी विषय का सिलसिला बना रहेगा।", इतना कहकर उन्होंने पूर्व कथा शुरू की ।

वीरासामी नायक्कर ने नासिका में सुंघनी भरकर कोंकण भट्टर के सिर पर मुक्का मारा ।

मैं बोला, "अब छेड़छाड़ बंद करें पंडितजी अपना भाषण सुना दें ....."

गर्जन शुरू हुआ –

"भारत देश में पुरुषों को भी मत देने का अधिकार नहीं । अर्थात् जनता की इच्छा पर प्रतिनिधि का चुनाव करके लोकसभा के द्वारा शासन करने का अधिकार हिंदुस्तान के लोगों को नहीं । हिंदुस्तान के लोगों में बुद्धि जरा कम है। हमारे देश के पुरुषों को भी जो मताधिकार प्राप्त नहीं हैं, वे अधिकार कुछ देशों में स्त्रियों के लिए हैं । अर्थात् राजकाज संबंधी बातों के निर्णय करने का अधिकार वहां की स्त्रियों को भी है ।

आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड, डेनमार्क, नार्वे, अमेरिका के आधे हिस्से, कनाडा, आदि देशों में स्त्रियों को मत देने का अधिकार है। इग्लैंड में भी इस प्रथा को अमल में लाने का प्रयत्न हो रहा है। पिछले मंत्री आस्कवित् जो बहुत दिनों से इसका विरोध करते थे, हाल में सुना है कि इसके पक्ष में बोल रहे हैं । अच्छा ... छोड़िये इस बात को ....

तुर्किस्तान को जानते हैं आप लोग। वहां कल तक स्त्रियों को परदे में रखा जाता था। कस्तूरी को डिब्बे में बंद करके रखते हैं न ? डिबिया खोलें तो सुगंध उड़ जायेगी - इस डर से बंद रखते हैं न ? वैसे हमारे देश में भी कई जातियों में ये प्रथा है । हिंदू नारी लगभग गुलामी की दशा में है । हां... हम तो घरों में बंद करके नहीं रखते । यदि ऐसे कमरे में पड़े रहें तो क्या हर्ज ? गुलाम को पानी भरकर लाने, खुली सड़क पर जाने दें, या कमरे में बंद करके कैदी बना रखें, क्या अंतर पड़ता है ? हर हालत में वह गुलाम ही है न ? जी ! मानव जीवन की दो दशाएं हैं। अपनी इच्छा पर, स्वेच्छा से जो चाहें करें, और हानि-लाभ के खुद जिम्मेदार रहें , यह एक दशा है । यही स्वतंत्रता है । ऐसा न होना, इच्छा हो या न हो, और की इच्छा पर चलने की मजबूरी जो है वही गुलामी है । हमने अपनी स्त्रियों को इसी दशा में रखा है । बातें बनाने से क्या लाभ ? जी ! हमारी स्त्रियां परतंत्र हैं, गुलाम हैं, इसमें कोई संदेह नहीं । हिंदुस्तान में पुरुषों को भी मतदान का हक नहीं। स्त्रियां तो इन पुरुषों की गुलाम बनी हैं । आजकल तुर्किस्तान में स्त्रियों की हालत, हिंदुस्तान की स्त्रियों से बेहतर हैं। मिस एलिसन नामक अंग्रेज महिला ने इस पर एक पुस्तक लिखी है । कल एक पत्रिका में उस पुस्तक की आलोचना निकली है । आलोचक सिंहल देश के बौद्ध हैं । उनका नाम जिनराजदास है। उन्होंने एक अंग्रेज महिला से शादी की है । उन्होंने बताया है कि तुर्किस्तान की स्त्रियां शिक्षा, राजनीति आदि में उत्साह से भाग लेकर, सभी क्षेत्रों में काफी उन्नति कर रही हैं – ऐसा उस पुस्तक में लिखा है । हाय-हाय ! रामा, राघवा, केशवा, विश्वमित्रा .... क्षमा कीजिये । संध्यावंदन के मंत्र जरा भूल गया।"

यों अपने भाषण के बीच-बीच में थोड़ा आश्वासन लेने के लिए उन्होंने हास्य की बात छेड़ी तो उनके प्रधान चेले कोंकण भट्टर ने जोर का ठहाका मारा । तुरंत वीरासामी नायक्कर ने उनके सिर पर मुक्का मारकर, अपनी नासिका में सुंघनी भर ली ।

पंडितजी ने फिर बोलना शुरू किया, "लड़की के बड़े होने के बाद, उसकी इच्छा से उसका विवाह करना है । यदि पुरुष उस पर जुल्म करें, और वह असहनीय हो तो स्त्री

को कानूनी तौर पर उससे संबंध विच्छेद करने का कानूनी अधिकार मिलना चाहिए । लोगों को इस बात पर उनकी निंदा नहीं करनी है । नारी आत्मनिर्भर नहीं । कमाकर पेट नहीं पाल सकती । इस विषय में नारी-स्वांतत्र्य के पक्षपाती पश्चिमी देश वालों से मेरा मतभेद है। नौकरी करके पेट पालने की मजबूरी नारी को न हो, यह मेरा विचार है। नारी को पैतृक संपत्ति में अधिकार होना चाहिए । यदि विवाहिता हो तो पुरुष की संपत्ति का उसे हकदार बनाना चाहिए । (पत्नी के हाथ में पैसा नहीं देना है, ऐसा कहने वाले मनुष्य भी ये सब कहते हैं) नारी को अपनी इच्छा से विचरण करने देना चाहिए । आम जगहों पर नारी को देखते ही उसका आदर करना चाहिए । जो पुरुष ऐसा न करे, गृहस्थों को उस व्यक्ति से संबंध नहीं रखने चाहिए । उनसे बोलचाल भी बंद कर दें तो अच्छा है। सड़कों पर, बाजार में, रेल में, बस में चाहे काशी शहर ही क्यों न हों, अगर स्त्रियां अकेले जायें तो पुरुषों को उनके प्रति आदरपूर्ण व्यवहार करना चाहिए । ऐसी व्यवस्था करना इस देश में, आज की स्थिति में मुश्किल है । क्या करें ? हिंदुओं में नब्बे फीसदी लोग निरे मूढ़ हैं । गंवार हैं । ये चाहे भाड़ में जायें, शिक्षित, सभ्य, गौरवपूर्ण जीवन बिताने वाले लोगों में ऐसी व्यवस्था लानी है कि नारी स्वेच्छा से बोल सके, बाहर घूम-फिर सके । इस पर अमल-दरामद कराने, साध्य कराने के लिए पुरुषों को दंड देना चाहिए । नालायकों को दंड देने से क्या लाभ है ? जी ! न जाने कितने दिनों तक यह देश पुराने कूड़े-करकट में सड़ता रहेगा ? घोंघा कीड़े के समान स्त्री, पुरुष साथ-साथ जन्म लेते हैं । इनमें एक मालिक रहे । और दूसरा गुलाम ? जी ! कैसे पामर लोग हैं ?" इसी वक्त मेरी बच्ची भोजन के लिए कहने और मुझे बुला ले जाने के लिए दौड़ी आयी, कोंकण भट्टर ने मुझसे पूछा, "अच्छा ! ब्रह्मराय पंडित के विचारों के विषय में आपकी राय क्या है ?"

मेरे कुछ कहने के पहले वीरासामी नायक्कर ने भट्टर के सिर पर मुक्का मारा और फट पड़े, "अजी ! आप चुप रहिये न ?" मैं बोला, "इस संसार की पंचायतों की मुझे आवश्यकता नहीं जी ! जिसे, जो कार्य सिद्ध करना है बस 'ओम ! शक्ति ! ओम ! शक्ति' करें। वह कार्य सिद्ध हो जायेगा । केवल इतना मैं जानता हूं ।"

"यह सच है" - पंडित ने हामी भरी । फिर क्या ? सारी गर्जन पाठशाला ने यह बात मान ली । मैं भी भोजन करने चला गया ।

तमिलनाडु में नवजागरण

जीव-हिंसा नहीं होनी चाहिए । मद्य-मांस के सेवन से ज्यादातर लोगों को हानि पहुंचती है। निरामिष भोजी रहना ब्राह्मणों के लिए बड़प्पन की बात है । यह एक बड़ी तपस्या है। यह अनुष्ठान कृतयुग के लिए मूलाधार मानी जाने वाली बात है ।

फिर भी, जिसका आचरण हम नहीं करते, उसको दूसरों को करते देख, घृणा करना गलत बात है ।

खाना, कपड़ा, शादी-विवाह आदि बातों में, अंधविश्वास के कारण रूढ़िग्रस्त होकर नियंत्रण लगाने, बंधन में बांधने आदि में कोई तथ्य नहीं ।

विश्वभर के मानव एक जाति के हैं । 'हाय इस युद्ध में कितने यूरोप वाले अन्याय से मारे जा रहे हैं' यह सोचकर मैं आंसू बहाया करता हूं । मैं आजादी के आंदोलन का समर्थक ही नहीं, थोड़ा उग्रवादी हूं । फिर भी यूरोप वालों की ऐसी बेमतलब मौत से मैं सहमत नहीं हूं । समस्त मानव एक कुल के हैं, एक जाति के हैं ।

समस्त मानव भाई-भाई हैं । एक प्राण के हैं। ऐसी हालत में यदि हम एक घर के अंदर ही अर्थहीन आचारों की दीवारें खड़ी करके, 'मेरी ही जाति अलग है, मेरे साले की जाति अलग, हममें सहभोज नहीं चलता । उसे जातिभ्रष्ट करना है' – ऐसी बातें करना कितनी मूर्खता है । इसे समझाने के लिए ही इसे लिख रहा हूं , और कुछ नहीं ।

तमिलनाडु में जाति संबंधी मूढ़ विचार तथा अर्थहीन बंधन की कड़ियां धड़ाधड़ टूटती जा रही हैं। चूर-चूर हो रही हैं ।

अगली बात है – नारी-स्वातंत्र्य ।

तमिलनाडु में इस आंदोलन का नेतृत्व जज सदाशिव अय्यर की सहधर्मिणी श्रीमती मंगलांबिका कर रही हैं । श्रीमती अनी बेसेंट इस विषय में उनके लिए ज्वलंत उदाहरण व प्रेरक शक्ति बनी रहती हैं ।

इन दोनों के कारण अब भारत देश में नारी जाति की स्वतंत्रता मिलने की संभावना दिखाई पड़ती है । तमिलनाडु इन दोनों का चिर ऋणी है। नारी का भी अपना जीवन है, हृदय है, बुद्धि है, पंचेंद्रियां है, वे मृत यंत्र नहीं । सजीव पेड़-पौधे नहीं। जैसा पुरुष है, वैसी नारी है । सप्राण व सजीव है नारी । शारीरिक दृष्टि से भेद है, मगर आत्मा एक ही है। यही इनका तर्क है।

कुछ लोग इस तथ्य को भूलकर उन्हें कोल्हू के बैल समझते हैं । और कुछ तो उन्हें तकिया मान रहे हैं, बस । और कुछ नहीं । यह दोनों विचार गलत हैं ।

स्त्री अपने इच्छित पुरुष से विवाह कर सकती है । विवाहिता स्त्री अपने पुरुष की गुलाम नहीं है । जीवन की सहचरी है, जीवन का सहारा है, जीवन का एक अभिन्न अंग है, हां शिव पार्वती के जैसे, विष्णु भगवान व लक्ष्मी के समान अर्द्धांग है । शिवजी और विष्णु परस्पर लड़ पड़े। ऐसी कथा सुनाने वाले कपोल-कल्पित पुराणों में भी, विष्णु ने लक्ष्मी को मारा था, या शिवजी ने पार्वती को बंद रखा था ऐसा जिक्र नहीं । शिवजी ने नारी को अर्द्धांगिनी बना लिया। भगवान विष्णु ने हृदय में धारण कर लिया । ब्रह्मा ने अपनी जिह्वा पर रख लिया है । समस्त सृष्टि का मूलाधार परमात्मा के दो अंश हैं - प्रकृति और पुरुष । दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं । समान हैं । इसमें नारी को रत्ती भर ऊंचा मानना ही उचित होगा ।

आजकल तमिलनाडु में ही नहीं सारी दुनिया में नारी को हेय और नर को श्रेष्ठ मानने की जो प्रथा चल पड़ी है, वह बिल्कुल गलत है । यह समस्त दुखों की जड़ है । अन्यायों का अड्डा है। कलियुग के आविर्भाव का आधार है ।

तमिलनाडु के बुद्धिजीवियों की समझ में यह बात आ गयी है और नारी स्वतंत्रता का आंदोलन बलवान हो रहा है, यह देखकर मुझे असीम आनंद का अनुभव होता है । इस विषय में भी तमिलनाडु संसार का पथ-प्रदर्शक बना रहेगा इसमें संदेह नही ।

अगला विषय है जाति भेद । भारत देश, खासकर तमिलनाडु, आज नहीं, चिरकाल से इस क्षेत्र में प्रदर्शक बना रहा है, यह तो सर्वविदित है । रामानुज ने तमिलनाडु में ही जन्म लिया था न ? आलवार और नायनमारो का जन्म भी इसी मिट्टी में हुआ है । भक्त नायनमारों के बीच अस्पृश्य चमार को भगवान के बराबर मंदिर के अंदर प्रतिष्ठित करने का श्रेय तमिलनाडु को ही प्राप्त है न ? चिदंबरम् के मंदिर के अंदर भगवान नटराज का ही नहीं, भगवान विष्णु का भी आल्य है । श्रीरंगम में विष्णु भगवान एक तुरुक्क स्त्री को देवी बनाकर तुरुक्क नाच्चियार (देवी) के नाम से आराधना करते आ रहे हैं । महान रामलिंग स्वामी ने कहा है, 'हर धर्म मान्य है ।'

यदि संसार भर के जातिगत भेदों का मूलोच्छेद करके सर्वधर्म समन्वयवाद के सिद्धांत को प्रतिष्ठित करना है तो तमिलनाडु ही इसके लिए उपयुक्त क्षेत्र है। धर्मभेद, और जातिभेद के विरोध से ऊपर उठकर, सारे संसार को एक ही ईश्वर की आराधना करने की ओर ले जाने वाले, एकेश्वरवाद की ओर ले जाने वाले महान व्यक्ति तमिलनाडु में अवतरित हुए हैं। इसी बात को लेकर मैंने कहा कि संसार में नवजागरण की किरण तमिलनाडु से फूटेगी।

बहनो ! जहां पर हमें पूर्ण समत्व प्राप्त नहीं है, वहां हम पुरुषों के साथ जीवन न बितायेंगे ऐसा करने पर अपने पति तथा नर समाज के द्वारा जो भी जुल्म व अत्याचार भोगना पड़े, कष्टों से पीड़ित होना पड़े, फिर भी न घबराना । बहनो ! जो जन्मा है उसे

मरना पड़ेगा एक दिन । चाहे आज मरे या कल। धर्म के लिए प्राण देने वाले भी मरते हैं, अन्य लोग भी मरते हैं, इसलिए बहनो ! घबराने की आवश्यकता नहीं, नारी-स्वातंत्र्य के लिए धर्मयुद्ध प्रारंभ कर दीजिये ! अवश्य ही हम विजयी होंगे। पराशक्ति हमारी सहायता करेगी ।

"वंदेमातरम् !"

पतिव्रता

आज के युग में अनेक असत्यों की पोल खुल जाती है । कई पुरानी धारणाएं चूर-चूर होकर बिखर जाती हैं । अन्याय एवं अधर्म खंड-खंड हो जाता है । कई अत्याचारी अतल पाताल में गिरते जा रहे हैं ।

आज के युग में, किसी के भय से, आतंक से आतंकित होकर, जिसे हम सत्य मानते हैं, उसे छिपाना नहीं चाहिए । पत्र-पत्रिकाएं ही आज के जमाने में, सचाई को अभिव्यक्त करने के उपयुक्त साधन हैं । संपादक लोग ही सत्य के सच्चे आश्रयदाता बने रहते हैं।

हरेक की कामना है कि स्त्रियां पतिव्रता रहें लेकिन इसमें दिक्कत यह है कि पुरुष योग्य व चरित्रवान नहीं रहता। प्रत्येक पुरुष अपनी पत्नी, व बेटियों के पतिव्रता बने रहने के विषय में जितनी उत्सुकता और श्रद्धा दिखाता है उतना पर-स्त्रियों के पातिव्रत्य की ओर नहीं दिखाता। हर कोई अपने वर्ग की स्त्रियों के पातिव्रत्य पर विश्वास रखता है, बस।

स्त्री, पुरुष परस्पर एक-दूसरे के प्रति सच्चे बने रहें तो भलाई होगी; प्रतिव्रता में बड़ी वीरता व शक्ति है । सावित्री ने यमदेव के हाथ से अपने पति के प्राणों की रक्षा की थी, इस कहानी में सचाई अंतर्निहित है । लेकिन एक स्त्री पतिव्रता नहीं है, इस बात को लेकर उसकी हिंसा करना, उसे सताना, मारपीटकर उसे जाति से भ्रष्ट, लोगों की निंदा एवं उपेक्षा का पात्र बनाकर सड़कों पर असहाय दशा में मरने देना — यह बड़ा अन्याय है ।

अरे ! मूर्ख लोगो ! पुरुष यदि चरित्रहीन हो, नारी कैसे पतिव्रता बनी रह सकेगी ? अच्छा अब एक काल्पनिक हिसाब लगाकर देखें। मान लीजिये, एक शहर की जनसंख्या एक लाख है जिसमें पचास हजार नारी हैं, पचास हजार पुरुष हैं । मान लो कि उसमें पैंतालीस हजार पुरुष पराई स्त्री पर आसक्त होते हैं तब तो कम से पैंतालीस हजार स्त्रियों को परपुरुष की वासना का शिकार होना पड़ेगा। इनमें बीस हजार पुरुष किसी तरह अपनी इच्छापूर्ति करा लेने में सफल होते हैं, ऐसा मान लें तो, बीस हजार स्त्रियों को मजबूरन व्यभिचारिणी रहना होता है, इन बीस हजार व्यभिचारिणियों में से सौ का ही बहिष्कार होता है । बाकी तो अपने पतियों के साथ जीवन बिताती हैं। लेकिन उनके पति को निश्चित ही यह बात मालूम नहीं है कि वे व्यभिचारिणी हैं । एकाध ऐसा भी होता है जो जानबूझकर चुप रहता है ।

ऐसा मान लें तो आखिर अधिकांश लोग चरित्रहीन नारियों के साथ ही जीवन बिताते

हैं । इसी प्रकार पातिव्रत्य की रक्षा करने हेतु, पुरुषों को स्त्रियों का मारना, पीटना, घोर यातना देना इत्यादि असीम रूप से चलता आ रहा है । छिः ! छिः ! यह कैसी अपमानजनक हार है पुरुषों की ! अन्याय और अत्याचार करने से भी कोई लाभ नहीं !

तुम मुझसे प्रेम क्यों नहीं करतीं ? प्यार नहीं दिखातीं ? इस प्रकार कहकर स्त्री की हड्डी तोड़ने का मतलब क्या है ? लोगों में इससे बढ़कर मूर्खता और क्या हो सकती है?

कोई वस्तु हमारी आंखों को प्रिय लगे, उसके प्रति खिंचे जाना, उसकी इच्छा करना स्वाभाविक है। मनुष्य तोते को सुंदर मानते हैं और मेंढ़क को कुरूप । मान लो कि इस बात पर मनुष्य को मारने, पीटने, गाली देने और जेल में डालकर घोर यंत्रणा देने की शक्ति मेंढ़कों को प्राप्त हो तो बताइये कि हम इसे न्यायसंगत मानेंगे ?

कुछ देशों में विदेशी आकर अन्यायपूर्ण शासन करते हैं। वे कहते है कि प्रजा को उनके प्रति राजभक्ति दिखानी चाहिए, अगर ऐसी राजभक्ति नहीं दिखाओगे तो तुमको जेलखाने में बंद कर डालेंगे । दुनिया के नीतिज्ञ ऐसे शासन की उपेक्षा करेंगे ।

स्त्रियों पर पुरुषों का निरंकुश शासन इस अन्यायपूर्ण शासन के बराबर है, यह बात तो हस्तामलक के समान स्पष्ट है । जोर-जबरदस्ती करके 'मुझसे प्यार करो' ऐसा कहना लज्जाजनक है न ?

यदि पुरुष चाहता है कि स्त्री उससे सच्चा प्रेम करे तो पुरुष को भी स्त्री के प्रति अटूट श्रद्धा रखनी चाहिए । भक्ति के द्वारा ही भक्ति का आविर्भाव होगा । एक दूसरी आत्मा, भय से त्रस्त होकर हमारे वश में रहेगी ऐसा मानने वाला चाहे राजा हो, गुरु हो या पुरुष हो, वह निरा मूर्ख है । उसकी इच्छा पूरी न होगी । आतंकित मानव का प्राण चाहे प्रकट रूप में गुलाम की भांति अभिनय करे, हृदय के अंदर द्रोह की भावना को वह अवश्य छिपाता रहेगा ।

भयवश होकर प्रेम खिलता नहीं ।

नारी-स्वातंत्र्य

कुछ दिनों पहले 'रायटर' का तार आया कि इंग्लैड में स्त्रियों को मत देने का अधिकार दे दिया गया है। 'स्वदेशमित्रन्' पत्रिका में इस पर 'स्त्रियों की जीत' शीर्षक से संपादकीय टिप्पणी प्रकाशित हुई। कल शाम जब मैं अपने मित्र वेदांत-शिरोमणि रामरायर तथा कुछ और लोगों के साथ बैठा था कि इसी बीच उक्त तारीख की वही 'स्वदेशमित्रन्' पत्रिका हाथ में लिये मोट्टु वीथी गोपाल अय्यर की पत्नी वेदवल्ली जी आ पहुंचीं ।

वेदवल्ली जी की उम्र चालीस वर्ष होगी । उच्च शिक्षा-प्राप्त तमिल और अंग्रेजी की ज्ञाता हैं । थोड़ी संस्कृत भी जानती हैं । इनके पति गोपाल अय्यर सरकारी नौकरी से अवकाशप्राप्त अफसर हैं । धनी होने के अभिमान से चूर, गोपाल अय्यर अपनी पत्नी और चार बच्चों के साथ बड़े आराम से अपना जीवन बिता रहे हैं । वेदवल्ली को उन्होंने पूरी छूट दे रखी है । वह जहां चाहे जा सकती हैं। जिससे चाहें बातचीत कर सकती हैं, घर में रसोई करने तथा और कार्य करने के लिए एक बुढ़िया है । वह सारी गृहस्थी संभाल लेती है । पुस्तकों, पत्र-पत्रिकाओं, शास्त्रों का विवेचन, सार्वजनिक सभाओं इत्यादि में वेदवल्ली जी अपना सारा समय लगाती हैं ।

मैं रामरायर आदि को वेदव्यास कृत ब्रह्मसूत्र का शंकराचार्य द्वारा लिखा अद्वैत भाष्य पढ़कर सुना रहा था और उस पर चर्चा कर रहा था ।

उसी समय वेदवल्ली जी आयीं । हमने उन्हें बैठने के लिए कुर्सी दी । वे बैठीं और पीने को पानी मांगा । मैंने पास में बैठी बच्ची से पानी लाने को कहा । वेदवल्ली जी ने मुझसे पूछा, "किस ग्रंथ पर विचार-विमर्श चल रहा है ?"

मैंने उत्तर दिया, "शंकर के भाष्य का ।" वे हंस पड़ीं । बोलीं, "अच्छा ! शंकर का भाष्य ? शाबाश ! भारतवासियों के लिए स्वराज्य के अधिकार की मांग पेश करके, अनी बेसेंट जी जाल में फंस गयी हैं । वह तो अंग्रेज महिला हैं । इधर हमारे देश के शूरवीर, नर शार्दूल, शंकर के भाष्य का अध्ययन करके, व्याख्या कर रहे हैं ! शाबाश ! शाबाश!"

बस ! रामरायर का पारा चढ़ गया । फट पड़े, "अच्छा ! जरा रुकिये न ! यह न समझना कि केवल आप ही राजनैतिक बातों की जानकार हैं ।"

"इंग्लैंड में स्त्रियों को मताधिकार दे दिया गया है ।" यह कहकर वेदवल्ली ने 'स्वदेशमित्रन्' पत्रिका को ऐसे फेंका कि वह रामरायर के चेहरे की तरफ उड़ आई । रामरायर ने झट हाथों से उसे रोक लिया, और नीचे गिरी पत्रिका को उठाकर चुपचाप मेज पर रख

दिया, फिर छत की ओर दृष्टि गड़ाकर चिंतामग्न हो गये। इतने में बच्ची पानी ले आयी। वेदवल्ली जी ने अपनी प्यास बुझा ली । फिर बोलीं, "रामरायर जी ! छत पर दृष्टि लगाये क्या देखते हैं ? वहां पर क्या लिखवा रखा है ?'ब्रह्म सत्यम्, लोकम् मिथ्या' .... इसलिए पंडितों का झूठी-मूठी बातें बघारते रहना ही उत्तम है – ऐसा लिखा है ?"

रामरायर का चेहरा एकदम लाल हो गया। उन्होंने मूंछों पर ताव दिया । दाढ़ी पर हाथ फेरा । फिर जोर से हंसने लगे ।

श्रीमती अनी बेसेंट का राजनीति में दखल देना, स्वदेशी आंदोलन को तारक मंत्र कहना, 'वंदेमातरम्' जीवन मंत्र है – ऐसा घोषित करना, आदि बातों से रायर जी सहमत न थे। उनके विचार में वेदांतियों को परब्रह्म की उपासना में लीन रहना चाहिए ।

वेदवल्ली जी रामरायर की तरफ देखकर बोलीं, "हर बात में अनी बेसेंट का कहना ही सत्य है, प्रामाणिक है, इस प्रकार गला फाड़कर आप चिल्लाया करते थे, अब स्वराज्य ही श्रेष्ठ है ऐसा कहकर ही उसकी उपेक्षा कर रहे हैं आप ! हाय ! हाय ! कैसे पुरुष हैं ! स्त्रियों में जितनी सामर्थ्य है पुरुषों में उसकी चौथाई सामर्थ्य भी नहीं है । पुरुषों से ज्यादा नारी की आयु लंबी है, इसलिए शारीरिक दृष्टि से सबल हैं, यह बात सारे देशों में प्रमाणित हो चुकी है । बुद्धि अधिक है, यह तो सच है।'

"कल हमारे घर एक दादाजी कह रहे थे कि सीता ने मायावी हरिण को सच्चा मानकर धोखा खाया था । मैंने पूछा, 'उस सीता की बात मानकर उस हरिण का शिकार करने जो गया, उस राम की बुद्धि से सीता की बुद्धि कम है या ज्यादा ?' दादाजी सिर झुकाकर बैठ गये जैसे मुंह में मोदक भर लिया हो । गुमसुम बैठ गये । हर प्रकार से नारी ही उत्तम है, श्रेष्ठ है । इसमें कोई संदेह नहीं ।

"स्त्रियां बातें करने में चतुर हैं ।" रामरायर ने कहा ।

"हमारे पुरुषों में एक भी ऐसा नहीं जो अनी बेसेंट की बराबरी करे । उन्होंने गवर्नर से बातें की हैं। कहिये ! आप गवर्नर से बातें कर सकेंगे ?" वेदवल्ली ने पूछा ।

ये सुनते ही रामरायर उठ खड़े हुए । बोले, "अच्छा ! मैं विदा लेता हूं।" मैंने दोनों पक्ष वालों को शांत किया। और अंत में निश्चय हुआ कि वेदवल्ली जी सामान्य पुरुषों के विरुद्ध जो चाहें बोलें, मगर रामरायर की ओर उंगली उठाकर एक शब्द भी न कहें । वेदवल्ली जी का भाषण शुरू हुआ –

"जब तक हिंदुस्तान की स्त्रियां राजीनति में भाग लेकर सक्रिय नहीं होंगी यहां के पुरुषों की आजादी संभव नहीं । पुराने जमाने में भारत देश के पुरुषों का जो हाल था उसके बारे में कहानियां मैंने पढ़ी हैं । लेकिन आज के पुरुष वर्ग पर कुछ कहा नहीं जा सकता। हिंदुस्तान की स्त्रियां भी राजनीति में भाग लेंगी तो अनी बेसेंट के बराबर काम करेंगी। यहां के पुरुष लोग वेदांत चिंतन और गुमास्तागिरी के ही काम आयेंगे । देश की भलाई का ख्याल करके, साहस के साथ अपने लक्ष्य के पूरे होने तक अधक परिश्रम करने की प्रतिभा इस देश के पुरुषों में कम है । सरोजिनी नायडू कितने साहस के साथ बोलती

हैं ! देखा आपने ! हां मुझे लगता है, संसार में हर नारी पुरुष से कहीं ज्यादा बुद्धि और धैर्य रखती है । अन्य देशों में चाहे जो हो, यहां नारी में जितना साहस और बुद्धि है उतनी पुरुष में नहीं। देखिये ..... इंग्लैंड में कैसे पुरुषों को वश में लाकर मताधिकार प्राप्त कर लिया है ?

हा.... हा.... हा.... अगली बार स्वराज्य की मांग पेश करने के लिए कांग्रेस वाले इंग्लैंड जायें तो वहां के पुरुषों से प्रार्थना करना काफी नहीं होगा, स्त्रियों से भी अनुनय-विनय करना है । इसके लिए यहां से अकेले पुरुषों के दल जाने से काम न चलेगा । वहां की स्त्रियां, यहां के पुरुषों को आदर की दृष्टि से नहीं देखेंगी । इसलिए कांग्रेस को स्त्रियों का प्रतिनिधि मंडल भेजना ही उचित होगा। मैं अंग्रेजी जानती हूं । मुझे भेजें तो मैं वहां की स्त्रियों को यहां का हाल बताकर, अनुनय-विनय करके भारत को मताधिकार दिलाऊंगी। हूं ! नारी की महत्ता केवल नारी ही जानती है । आप लोगों से बताने में क्या लाभ ?"

रामरायर बोले, " अच्छा । अब किसी और विषय पर बातें हों ।" इस प्रकार रामरायर को बात काटते देख वेदवल्ली जी नाराज हो गयीं । कहा, "मैंने इनकी ओर इंगित करके कुछ नहीं कहा था तो इनको चुप रहना चाहिए था ? सभा के प्रारंभ में जो शर्त बतायी गयी उसे इतनी जल्दी भूल गये ! " ऐसा कहकर वह चली गयीं ।

मैंने बहुत कुछ कहा लेकिन उन्होंने एक न मानी । बोलीं, "जिस सभा में वे हैं वहां मुझे नहीं रहना ।" वेदवल्ली जी के जाने के उपरांत रामरायर कुछ भुनभुनाते रहे । पूछा, "क्या कह रहे हैं आप ?"

"कुछ नहीं, स्त्रियों को स्वतंत्रता देना नितांत आवश्यक है ।"

हम लोग फिर से शंकर के भाष्य की चर्चा में लग गये ।

चाहे किसी भी प्रकार के गुलाम हों उनको यदि आजादी दे दें तो युग-प्रलय हो जायेगा, संपूर्ण ब्रह्मांड टूटकर बिखर जायेगा । जगत का सर्वनाश हो जायेगा – यह कथन उन शासकों के संप्रदाय के हैं, जो उन पर हुकूमत कर रहे हैं ।

बीस-तीस साल पहले तमिलनाडु में कई लोगों ने कहा था कि स्त्री शिक्षा का प्रचलन होगा तो स्त्रियां चरित्रहीन हो जायेंगी । अब तो तमिलनाडु में स्त्री शिक्षा का सामान्य रूप से प्रचलन है, लेकिन ब्रह्मांड टूटकर नहीं बिखरा । अब तक सुरक्षित है । किंतु अब बहुत से लोग भय से कांप रहे हैं कि यदि स्त्री को आजादी दे दी तो सप्त लोक टूटकर भूलोक पर अवश्य गिर जायेंगे। धूमकेतु इत्यादि ग्रह, नक्षत्र इनके बीच में आकर कुचले जायेंगे। 'मद्रास मेल' के अंग्रेज संपादक जी के पास जाकर पूछिये कि भारत को आजादी दे दी जाये तो क्या होगा ? वे लंबी सांस भरकर कहेंगे, " हाय-हाय ! हाय भारत को आजादी दे दी जाये तो पंजाबी लोग राजपूतों को मारेंगे, फिर राजपूत महाराष्ट्र के लोगों को जिंदा ही निगल लेंगे । फिर तो महाराष्ट्र के मराठे, तेलुगु , मलयाली, कन्नड़ लोगों को खत्म कर देंगे । मलयाली तमिल ब्राह्मणों को और तमिल ब्राह्मण द्राविड़ों को चूर-चूर कर देंगे।

इस तरह सताये गये द्राविड़ लोग बंगालियों की हड्डियां तोड़कर माला बनाकर गले में डाल लेंगे ।"

यही प्रश्न जज मणि अय्यर, केशवपिल्लै, चिदंबरम पिल्लै आदि से पूछा जाये तो वे बतायेंगे, " ऐसी कोई बड़ी विपत्ति नहीं आयेगी । स्वराज्य मिले तो हमारा कष्ट कम होगा। अकाल पड़ेगा तो उसे संभालने की शक्ति आयेगी। अकाल से मरना दूर होगा, बस । और कुछ नहीं ।"

नारी को आजादी देने से समाज में खलबली मच जायेगी, ऐसा कहने वाले अपनी आंखों के सामने उन लोगों को स्वतंत्र जीवन बिताते देखना नहीं चाहते, इसलिए ईर्ष्यावश ऐसा कहते हैं। और कुछ नहीं। आजादी के माने क्या हैं ? आजादी दें तो स्त्रियां किस दशा में रहेंगी ? स्त्री को आजादी देकर क्या करना है ? घर से भगा दें उनको ? आखिर क्या करना होगा ? यों शंकाएं उठ सकती हैं। ऐसी शंकाएं उठाते वक्त यह सोचना पड़ता है कि आजादी का वास्तविक अर्थ क्या है ? इसका उत्तर देना बड़ा आसान है ।

दूसरों को आघात न पहुंचायें, न मारें, न पीटें, न गाली दें, उनकी मेहनत के फल का शोषण न करें, फिर अपनी इच्छा पर जो चाहे कर सकते हैं । उक्त स्थिति में कोई अपने को 'आजाद' मान सकता है । हेर्बर स्पेंसर का कहना है कि दूसरों को हानि पहुंचाये बिना यदि कोई स्वेच्छा से कर्म कर सकता है तो वही आजादी है ।

इस विचार के अनुसार देखा जाये तो संसार में अधिकांश पुरुषों को भी आजादी प्राप्त नहीं हुई है । लेकिन इस 'आजादी' को पाने के लिए हर देश में पुरुष वर्ग संघर्ष कर रहा है । पुरुषों का एक-दूसरे के गुलाम बने रहना असहनीय अन्याय है । मगर इस कष्ट से हजारों गुणा ज्यादा दुख है पुरुषों द्वारा नारी वर्ग को अपना गुलाम बनाये रखना ।

परतंत्र, गुलाम देशों में भी पुरुष लोग - (खुफिया पुलिस की निगरानी में जो न आये हैं) अपनी इच्छा पर जहां चाहे जा सकते हैं । घूम-फिर सकते हैं । अकेले जाना वर्जित नहीं है । लेकिन ऐसे देश भी हैं जहां नारी अपनी इच्छा से अकेले घूम-फिर नहीं सकती है । हमारे देश के अधिकांश भागों में यही दशा है, उस पर मुझे बड़ा दुख है।

ओहो ! नारी को अकेले, बाहर निकलने दें तो अनर्थ हो जायेगा, ब्रह्मांड टूटकर बिखर जायेगा, कोई नियम एवं बंधन न रहेगा । लोग पशुतुल्य हो जायेंगे — ऐसा तमिलनाडु के कुछ सनातनी लोग सोचेंगे । यह ठीक नहीं । यूरोप और अमेरिका में स्त्रियां स्वेच्छा से घूम-फिर सकती हैं, इसलिए वहां भूकंप नहीं आता । हम में से बहुत से लोग श्रीमती अनी बेसेंट का नाम बड़े आदर से लेते, और उनकी प्रशंसा करते हैं । यदि हम कहें कि उनकी तरह हमारी स्त्रियां भी रहें तो तुरंत इसका खंडन किया जायेगा । इसका कारण क्या है ? यूरोपीय स्त्रियों की तुलना में हमारी स्त्रियां अविश्वसनीय हैं ?

कुछ लोग इस प्रकार की आपत्ति उठा सकते हैं कि यूरोप वालों का उदाहरण लेना हमारे लिए ठीक न होगा । हम आर्य हैं, द्राविड़ हैं । वे तो यूरोप के हैं ।

ठीक है, भारत में महाराष्ट्र प्रदेश में स्त्रियां स्वेच्छा से विचरण कर सकती हैं । तमिलनाडु

नारी-स्वातंत्र्य के संबंध में मुख्य बातें अर्थात् प्रारंभिक सीढ़ियां ये हैं –

(1) नारी के बालिग होने के पहले उसकी शादी नहीं करनी चाहिए ।

(2) उसकी इच्छा के विरुद्ध किसी से शादी करने के लिए मजबूर नहीं करना चाहिए।

(3) विवाह के बाद भी यदि वह चाहे तो पति से संबंध-विच्छेद की अनुमति उसे मिलनी चाहिए; इस बात पर उसका अपमान नहीं करना है ।

(4) पैतृक संपत्ति में बेटियों को भी बराबर हिस्सा देना चाहिए ।

(5) पति की मृत्यु के बाद यदि कोई स्त्री विवाह करना चाहे तो उसे मना नहीं करना चाहिए ।

(6) कुंआरी रहकर यदि कोई नारी व्यापार, कोई धंधा या उद्योग करके गौरवपूर्ण जीवन बिताना चाहे तो उसे स्वेच्छा से आजीविका ढूंढ लेने का मौका देना चाहिए।

(7) स्त्रियां पति के अलावा अन्य पुरुषों से न मिलें, बातचीत न करें, भय एवं ईर्ष्यावश जो ऐसा नियम बना रखा है उसे समाप्त कर देना चाहिए ।

(8) उच्च शिक्षा के सभी क्षेत्रों में स्त्रियों को भी पुरुषों के बराबर स्थान देना चाहिए।

(9) योग्यता-प्राप्त स्त्री सरकारी नौकरी प्राप्त करना चाहे तो कानूनी दृष्टि से उसे वर्जित नहीं करना चाहिए ।

(10) तमिलनाडु में जहां पुरुष ही राजनीतिक अधिकारों से वंचित है, स्त्रियों के राजनीतिक अधिकारों पर कुछ कहना अर्थहीन है । फिर भी यदि निकट भविष्य में स्वतंत्रता मिले तब स्त्रियों को भी राजनीतिक अधिकारों में अवश्य ही हिस्सा देना चाहिए। अंग्रेज महिला अनी बेसेंट ने पिछले साल कांग्रेस के अधिवेशन में अध्यक्षासन ग्रहण किया था, इसे भूलना नहीं है ।

इस तरह हम स्त्रियों को उन्नति की ओर मार्ग दर्शन करायें तो वे अपने प्रयत्न से पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त करके मानव जाति की रक्षा करेंगी । तथा प्राचीन काल की ऋषि-पत्नियों के उन्नत स्थान पर हमारी स्त्रियां पहुंच सकती हैं । स्त्रियों को पशुतुल्य रखकर मनुष्य बनाने का हमारा प्रयत्न मूर्खता है ।

नारी की उन्नति न होने से नर उन्नत न होगा ।

तमिलनाडु की संस्कृति

तमिल सभ्यता पर मैंने अपने पिछले लेख में कुछ बातें लिखी थीं । अब उन पर कुछ विस्तार से यहां लिख रहा हूं । प्राचीन तमिल सभ्यता एवं संस्कृति में नारी के लिए अधिक स्वतंत्रता थी । तमिलनाडु की प्राकृतिक किलेबंदी सा बना केरल प्रदेश का रहन-सहन व तमिल सभ्यता से हमेशा निकटतम संपर्क ही उस स्वतंत्रता का मुख्य कारण था । केरलीय सभ्यता में नारी को प्रधानता प्राप्त रही है ।

अतिप्राचीनतम तमिल भाषा और अतिप्राचीन मलयालम भाषा, असल में एक ही हैं, परवर्ती काल में भी चेरनाडू (केरल) तमिलनाडु का एक हिस्सा माना जाता था । समस्त चेर राजगण तमिषर् थे । वे तमिलनाडु के राजाओं में से ही गिने जाते थे । भाषा के समान ही सभ्यता की दृष्टि से भी अति प्राचीन काल की तमिल सभ्यता और केरलीय सभ्यता एक ही है ।

परवर्ती काल में भी पहाड़ों से घिरा केरल नाडु जहां तक हो सके प्राचीन तमिल संस्कृति एवं सभ्यता की रक्षा करता आ रहा था । पहाड़ों के इस पार पूर्वी मैदानों में पली तमिल संस्कृति एवं सभ्यता, तेलुगु आदि उत्तर भारत की सभ्यता से प्रभावित होने से दिन-ब-दिन बदलती रही, और हिंदुस्तान की आम सभ्यता एवं संस्कृति की अनुगामिनी रही ।

केरल में तो उनकी अपनी सभ्यता और रीतियां कभी न छूटीं । आम तौर पर सारे संसार के पहाड़ी लोगों को बाघ, चीता, भालू , लोमड़ी इत्यादि पहाड़ी वन्य जंतुओं से संघर्ष करते हुए पहाड़ी गरमी और वर्षा, ठंड और जंगली आग से बचकर, बड़ी कठिनाई से अपनी जीविका चलानी होती है । इसलिए वे लोग मैदानी प्रदेशों के निवासियों की तरह अपनी स्त्रियों के प्रति उतने अनुदार और कठोर नहीं होते। इसके विपरीत आदर, प्रेम और दया का व्यवहार करते हैं । यूरोप में स्विट्जरलैंड देश की पहाड़ी स्त्रियों को अन्य प्रदेश की स्त्रियों से ज्यादा आजादी प्राप्त है । वे स्वतंत्रापूर्वक अपना जीवन बिता रही हैं ।

केरल देश में तो नारियां स्वतंत्र ही नहीं, उन्हें संपत्ति प्राप्त करने का अधिकार भी है । केरलीय सभ्यता के निकट परिचय से प्रभावित तमिलनाडु में भी, हिंदुस्तान के अन्य प्रदेशों की नारियों से अधिक स्वतंत्रता दी जा रही है । इस्लामी सभ्यता के प्रभाव के कारण उत्तर भारत के कुलीन मुस्लिम वंशों की स्त्रियों को बुरका पहनने की प्रथा अपनानी पड़ी थी, मगर उस वक्त भी तमिलनाडु तथा उसकी सभ्यता से प्रभावित तेलुगु और कन्नड़ प्रदेशों

में बुरका प्रथा का अनुकरण न हुआ ।

दुनिया भर में स्त्री संबंधी विधि-विधान का निर्णायक पुरुष ही रहा है । वही इस शास्त्र का रचयिता है । राजनीति से संबंधित बातों में यद्यपि तमिलनाडु की स्त्रियां एक हद तक पुरुष के विधान के अधीन रहीं, फिर भी सामूहिक नीति संबंधी बातों में 'औवैयार' के नीति वाक्य व नीति ग्रंथ ही तमिलनाडु में प्रामाणिक बने रहे । पुरुष वर्ग में भी उच्च शिक्षा-प्राप्त लोग ही जन समाज से संबंधित बातों और सार्वजनिक विषयों के लिए वलकुवर के कुरळ, नालडियार आदि को प्रामाणिक मानते हैं । अशिक्षित और अर्धाशिक्षित वर्ग के लोगों में स्त्री, पुरुषों के लिए औवैयार की नीति संबंधी सूक्तियां ही पथप्रदर्शिका हैं । गत दो हजार सालों से तमिलनाडु की जनता में लोगों के लिए औवैयार के नीति ग्रंथ ही ज्यादातर प्रामाणिक बने रहे।

यह न समझना चाहिए कि आम जनता ही औवैयार की नीति सूक्तियों को मानती है और शिक्षित तथा राजा लोग उसकी उपेक्षा करते थे । शिक्षित जन, राजा लोग, तमिल भाषा-भाषी, सबको कुरळ, नालडियार आदि ग्रंथों से ज्यादा औवैयार के ग्रंथों के प्रति अधिक श्रद्धा और स्नेहपूर्ण आदर है । लेकिन कुछ लोगों का कहना है कि ये नीति ग्रंथ दो हजार साल पहले के औवैयार द्वार रचित ग्रंथ नहीं हैं। लगभग हजार साल पहले जो दूसरी औवैयार थीं उनकी कृतियां हैं ।

औवैयार केवल लेखिका ही नहीं अपने जमाने की कुशल राजनीतिज्ञ भी रहीं । उनको तमिलनाडु के राजा, महाराजाओं द्वारा सम्मान भी दिया गया तथा उन्हें राजदूत बनने का गौरव भी प्राप्त था । इसके अतिरिक्त वे बड़ी ज्ञानी भी थीं । योगसिद्धि के द्वारा उन्होंने अपने शरीर को जरा, रोग व मरण से चिरकाल तक सुरक्षित रखा था ।

"मार्सट् कोळगै मनत्तमैन्दक्काल
ईसनैक्काट्टुम उडम्बु"

अर्थात् , "छल, कपट, भय, दोष और वैर भावना से मुक्त होकर, हृदय में पवित्र विचारों को रखें तो शरीर दैवी शक्ति अर्थात् अमरत्व से युक्त रहेगा ।" इस दोहे की कवयित्री औवैयार हैं । इनकी जीवनी से पता चलता है कि वे इस सिद्धांत का पालन अपनी शक्ति भर करती रहीं ।

पिछले लेख में लिखा था कि किसी देश की संस्कृति एवं सभ्यता का परिचायक उस देश का साहित्य ही है । उदाहरण में शेक्सपियर जैसे महाकवियों की रचनाएं ही अंग्रेजी सभ्यता के मापदंड माने जाते हैं । मैकाले नामक एक अंग्रेज का कथन है, "चाहे हम भारत पर अपना अधिकार गंवाने पर सहमत हों, शेक्सपियर को गंवाने को कभी तैयार नहीं हैं ।"

हम कवि कंबन को, तिरुवळकुवर को, शिल्पदिकारम् के रचतियता इलंगो अडिकळ को इस प्रकार का गौरव दे सकते हैं । इनके अतिरिक्त कुछ और कवियों के नाम भी ले सकते हैं । लेकिन कंबन, तिरुवळकुवर जैसे लोगों से श्रेष्ठ मानी गयी, औवैयार का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय रहेगा । यदि कोई हमसे पूछे कि तमिलनाडु की अमूल्य

निधियों में से तुम किसे गंवा देने को तैयार हो ? औवैयार के ग्रंथ ? या अन्य निधियों को ? तो हमें तुरंत यह उत्तर देना होगा — चाहे समस्त निधियां लुट जायें, कोई बात नहीं, तमिलनाडु उनको फिर से संचित करने में समर्थ है । लेकिन औवैयार के ग्रंथों से हाथ धोने के लिए कभी सहमत नहीं । वे ऐसी अमूल्य निधि हैं जिनकी रचना पुनः संभव नहीं। एक तमिल महिला के ग्रंथ, तमिल सभ्यता एवं संस्कृति के लिए अद्वितीय निधि, ज्योतिर्मय अमर दीप से उज्ज्वल, उनके प्रखर व्यक्तित्व का परिचायक बने रहना, हमारे देश की स्त्रियों के लिए बड़े हर्ष की बात है न ? तमिलनाडु की स्त्रियों के लिए यह विशिष्ट गौरव की बात ही नहीं, उनकी रक्षक भी है । जिस मिट्टी में औवैयार ने जन्म लिया है, उस मिट्टी के नारी वर्ग को कोई इस प्रकार प्रताड़ित कर नहीं सकता कि पुरुषों से नारी की बुद्धि कम है। उदाहरण के लिए इंग्लैंड को लीजिये, वहां पुरुषों के बराबर स्त्रियों को मताधिकार का विरोध करने वाले लोगों का दावा है कि स्त्रियों की बुद्धि और ज्ञान की प्रतिभा स्वाभाविक रूप से पुरुषों से कम है, इसलिए वे केलव गृहस्थी का कामकाज संभालने योग्य हैं; राज-काज संबंधी बातों का निर्वाह करने की क्षमता उनमें नहीं । इस तर्क की पुष्टि में वे शेक्सपियर का नाम लेते हैं । कहते हैं, "शेक्सपियर के समकक्ष किसी प्रतिभावनी कवियित्री ने हमारे देश में कभी जन्म लिया है ? नहीं लिया न ? इससे स्पष्ट है कि स्त्रियां बुद्धि और प्रतिभा में पुरुषों से कम हैं ।"

तमिल भाषा के लिए यह तर्क लागू नहीं होगा । इसके विपरीत तमिलनाडु की स्त्रियां दावे के साथ कह सकती हैं कि औवैयार के बराबर कविता व नीतिशास्त्र की रचना करने योग्य किसी व्यक्ति का जन्म क्यों न हुआ ? इससे स्पष्ट है कि स्वाभाविक रूप से पुरुष की बुद्धि और प्रतिभा स्त्रियों से कम है ।

महिमामयी आत्मज्ञानी औवैयार द्वारा रचित 'औवै कुरळ' नामक ग्रंथ तमिलनाडु के योगी और सिद्ध पुरुषों की दृष्टि में उपनिषद के तुल्य माननीय है। योगशास्त्र एवं मोक्षशास्त्र की दृष्टि से यह ग्रंथ विशेष रूप से पठनीय है । इसके अतिरिक्त 'योगानुभूति' पर लिखते वक्त लोगों का यह विचार रहता है कि इस अनुभूति की अभिव्यक्ति के लिए क्लिष्ट, गूढ़ और असाधारण शब्दों एवं वाक्यों का प्रयोग अनिवार्य है । लेकिन औवैयार के ग्रंथ सर्वसाधारण की समझ में आने लायक, सरल सुबोध शैली में लिखे गये हैं। चंद शब्दो में मार्मिक तथ्यों की अभिव्यक्ति काव्य कला के क्षेत्र में उन्नत प्रतिभा का परिचायक है । औवैयार इसमें अद्वितीय थीं । विशिष्ट प्रतिभाशील कवि, अति सूक्ष्म मार्मिक तथ्यों को सबकी समझ में आने लायक सरल, सुबोध शैली में लिखना असाधारण प्रतिभा मानते हैं, वे उसे अलौकिक व्यापार मानते हैं। जिन कवियों को ऐसी अलौकिक प्रतिभा प्राप्त नहीं उनके लिए यह असंभव माना जाता है। काव्य क्षेत्र में भी, कवित्व शक्ति के प्रयोग में औवैयार अपना सानी नहीं रखतीं ।

पुरुषार्थ, अर्थात् मानव जन्म पाने से धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष नाम के जिन चारों पदार्थों

को कोई प्राप्त कर सकता है। उनमें 'वीडु' कहा जाने वाला मोक्ष, मन तथा वचन का अगोचर होना, इसकी विस्तार व्याख्या करने के बदले मोक्ष-प्राप्ति के साधन ईश्वर-भक्ति मात्र को प्रथम अध्याय में बताकर, अन्य तीनों पुरुषार्थों की व्याख्या, तिरुवळ्ळुव ने 'मुप्पाल' (तीन भागों वाला) नामक तिरुक्कुळ में किया है । एक हजार तीन सौ तीस 'कुरळ' के छोटे पदो में तिरुवळ्ळुवर ने, धर्म, अर्थ, काम आदि तीनों पुरुषार्थ तत्वों का जो प्रतिपादन किया है, वह उनकी अलौकिक प्रतिभा का परिचायक माना जाता है। इस पर औवैयार ने 'मोक्ष' को भी लेकर, चारों पुरुषार्थों को एक छोटे से 'वेणवा' (तमिल काव्य का एक छंद) के अंतर्गत प्रकट किया था । वह अद्भुत वेणवा इस प्रकार है –

"इंदलरम्: तीविनैविट्टिडल पोरुल, एंगजानूरुम, कादलित्तवर करुत्तोरुमित्तू आदरवु पट्टदे इनूबम्; परनै निनैन्दुनू मूनूरुम् विट्टदे पेरिइन्बवीडू"

इसका अर्थ है – दानशीलता, अर्थात् संसार के लोगों के उपकार में अपना धन एवं प्राण अर्पण कर देना; अपने तन से, वचन से, शरीर और मन से, कर्म से दूसरों का कष्ट दूर करके उनका हित करना; धन देना ही दानशीलता है, कई लोग गलती से ऐसा समझते हैं । दूसरों के लिए अपना प्राण न्यौछावर करना भी दानशीलता है न ? धनोपार्जन जैसे सांसारिक सुखों को स्वयं अर्जित करने की योग्यता प्राप्त करने की शिक्षा देना भी दानशीलता नहीं है ?

प्रत्याशा के बिना दूसरों के कष्ट निवारणार्थ जो भी कर्म और सहायता की जाती है वह भी दानशीलता है । यही मनुष्य के लिए इस सांसारिक जीवन में धर्म है अर्थात् कर्तव्य है। अब अर्थ के मायने क्या हैं ? दुराचरण एवं दुष्कर्म न करके, अपनी बुद्धि व शारीरिक श्रम द्वारा अर्जित खाद्य, वस्त्र व जीवन की आवश्यक वस्तुएं, घोड़ागाड़ियां, आभूषण, बाजे, शिल्पमूर्तियां, इत्यादि भोगविलास की चीजें, इन सुख-सुविधाओं को भोगने के लिए घर-बार, बाग-बगीचे इत्यादि, तथा इन वस्तुओं को प्राप्त करने हेतु मानव द्वारा विनिमय के साधन के रूप में स्वीकृत, सोने की अशर्फियां, चांदी के सिक्के, कागजी नोट आदि, धन अर्थात् अर्थ माने जाते हैं । सत्कर्म द्वारा संचित धन ही सुखदायक है, दुष्कर्म द्वारा अर्जित धन विभिन्न दुखों और कष्टों का कारण बन जायेगा, इसलिए दुष्प्रवृत्तियों को त्याग कर सत्कर्म द्वारा जो धन संचित किया जाता है वह 'अर्थ' कहने योग्य है । दुष्कर्म द्वारा संचित धन दुखों का भंडार है । ऐसा औवैयार ने कहा है ।

अब 'इन्बम्' के लिए औवैयार ने जो परिभाषा दी है वह बहुत महत्वपूर्ण है । हमारे पूवर्जो ने प्रेम के सुख को 'इन्बम्' माना है । धन संचित करने में, धर्म को निभाने में अल्प मात्रा में सुख की अनुभूति प्राप्त होगी, लेकिन प्रेम के सुख के लिए ये उसके आनंद को बढ़ाने मे सहायक रहते हैं, इसलिए एक हद तक इनको सुख मान सकते हैं । मानव स्वादिष्ट पदार्थों को खाने, सुगम, मधुर संगीत का श्रवण करने, सुवासित पुष्पों की सुगंध लेने आदि इंद्रिय सुखों की सुखद अनुभूति के लिए लालायित होकर उनको प्राप्त करने के लिए भारी

श्रम करते हैं । अधिकार का सुख, कीर्ति का सुख, जैसे अंसख्य छोटे-मोटे सुखों के पीछे दौड़ते रहते हैं । उसके लिए श्रम करते हैं । मगर ये सब क्षण भर के अल्प सुख हैं, ऐसा मानकर हमारे पूर्वजों ने इनको 'इन्बम्' के अंतर्गत नहीं लिया था । कीर्ति, अधिकार आदि को 'धर्म' व अर्थ के फलों के अंतर्गत गिना है । इंद्रिय सुखों में, मीठे पकवानों का भक्षण, मधुर फलों को खाना, सुगंधित फलों का सेवन आदि से मन शीघ्र ही उकता जायेगा। इसके अतिरिक्त ये केवल शारीरिक सुखों की उपलब्धियां हैं, आत्म सुख की प्राप्ति में अधिक सहायक नहीं होते – इसलिए इनको इन्बम् अर्थात् काम खंड में नहीं लिया है । (तमिल में इन्बम् माने, वासनारहित सुख और आनंद है ।)

"कंडु केट्टुणडुयिर्त्तुद्ररियु मैपुलवुम
ओणडोडीळ कण्णेयुळ"

इस कुरळ (पद) का अर्थ है – पंचेंद्रियों के सुख की उपलब्धि प्रकाशमान "रूप, स्पर्श, गंध, रस, शब्द, आदि चूड़ी से सजी इस नारी में ही है ।"

प्रेम का सुख अर्थात् इन्बम् मन, प्राण व आत्मा को एक साथ सुख पहुंचाने से, उस सुख की अनुभूति समस्त संसारिक सुखों में विशिष्ट और अलौकिक होती है इसीलिए मानव जन्म लेकर एक व्यक्ति को जिन पुरुषार्थों को प्राप्त करना है, उस पर विचार करते समय हमारे पूर्वजों ने 'प्रेम के सुख को ही,' इन्बम् का नाम दिया है । आमतौर पर 'इन्बम्' के नाम से जो सुख विशिष्ट बनाया गया है, वह सुखद अनुभूति केवल प्रेमानुभूति ही है। इस अलौकिक अनुभूति को, निश्चल रूप से भोगने का, अनुभव करने का मार्ग क्या है, इसे औवैयार ने सुंदर, मधुर, सशक्त शब्दों में देने की कृपा की है ।

औवैयार का कहना है कि – पुरुष का स्त्री से, स्त्री का पुरुष से प्रेम हो, और वे, मन, वचन, कर्म, द्वारा पातिव्रत्य में दृढ़ रहकर परस्पर प्यार करते रहें, तथा एक मन होकर, एक-दूसरे से अनुरक्त हों, मिलन सुख का आनंद लें तो वह मिलनानुभूति ही 'इन्बम्' अर्थात् सुख है ।

अब 'मोक्ष' (वीडु) से तात्पर्य क्या है, इस पर विचार करें । ईश्वर को अपने हृदय में प्रतिष्ठित करके, अहम् की भावना को त्यागकर, ईश्वरीय बोध से अनुप्राणित हों, ऊपर कहे तीनों पुरुषार्थों से निर्लिप्त रहना ही 'मोक्ष' है । इस 'मुक्ति' को प्राप्त करने से कोई अन्य तीनों पुरुषार्थों से तटस्थ रहकर, निष्क्रिय हो जायेगा, ऐसा मानना बड़ी गलती है। जब तक शरीर में प्राण हैं, ईश्वर प्रदत्त प्रकृति किसी को निष्क्रिय पड़ा नहीं रहने देगी।

भगवत्गीता में भगवान ने कहा है, कोई भी पुरुष, (मन से, वचन से, शरीर से) एक क्षण के लिए ही क्यों न हों, कोई कर्म किये बिना नहीं रह पाता । प्रकृतिजन्य गुणों के कारण हर कोई, परवश होकर, अनवरत् कर्मरत रहने पर विवश हो जाता है ।

औवैयार के ग्रंथों से उद्धरण लेकर, उनकी सूक्तियों व सुभाषितों की व्याख्या करके उनकी प्रतिभा को प्रतिपादित करना है तो बहुत से पृष्ठ लिखने होंगे । मेरा लेख तो अभी

काफी लंबा हो गया है । इस महान प्रतिभासंपन्न कवियित्री के बारे में, आज की पीढ़ी के जानने योग्य जो महत्वपूर्ण बातें हैं, उनमें जो मुझे अति आवश्यक लगी हैं, उन मुख्य बातों को एक और लेख में संक्षिप्त रूप से बताने का विचार कर रहा हूं।

मेरे आदर एवं स्नेह की पात्र बनी तमिलनाडु की बहनो ! इस पुरातन गरिमामय तमिलनाडु की संस्कृति और सभ्यता का उज्ज्वल भविष्य आप लोगों की शिक्षा एवं साधना पर निर्भर है । इस समस्त भूमंडल में अद्वितीय, अनुपम क्षेम निधि के लिए भगवान ने आप लोगों को संरक्षिका बनाया है । आज इस घड़ी में यह दुनिया प्रचंड, प्रलयंकारी आंधी के समान विद्रोह, उथल-पुथल मचा देने वाले संघर्ष, सभी उलटफेरों के बावजूद, आलोड़ित सागर में, डांवाडोल होती छोटी नाव के समान, हिलती, डुलती, डूबती, उतराती चकराती, टकराती रहती है ।

ईश्वर कृपा करें – इस महाप्रलय में तमिल संस्कृति एवं सभ्यता चूर-चूर न हो जाये। परमात्मा आप पर ऐसी कृपा करें, कि आप अपनी विद्या, बुद्धि, चारित्रिक महत्ता, स्वतंत्रता के द्वारा इस महान संस्कृति को नष्ट होने से बचायें।

तृतीय खंड – समाज

जाति-पाँति की समस्या
पुरातन संसार
पशु-पक्षी
अनंत शक्ति
तमिल भाषा
स्वतंत्रता
सभ्यता का मूल स्रोत

जाति-पांति की समस्या

भारत में खासतौर पर दो प्रकार की कठिनाइयां हैं । एक तो धनाभाव की और दूसरी जाति की समस्या । धनाभाव में पेट भर अन्न न मिलने की त्रासदी है । हमारे देश में उत्पन्न पदार्थों को विलायत के लिए निर्यात करने पर रोक लगाना, इस दुख से छूटने का एक मार्ग है। इंग्लैंड जैसे कुछ देशों में सवेरे बिस्तर छोड़ते ही नाश्ते के लिए दक्षिण अमेरिका से मंगायी गयी मछली खाने को मिलती है। मक्खन तो आस्ट्रेलिया का होता है । हमारे देश में यह हालत नहीं है। हमारी मिट्टी उर्वरा है । वह हमारे देश के लोगों को पर्याप्त खाद्य पदार्थ प्रदान् करती है। बहुत सा धन संचय करके न रखें तो खाद्य पदार्थ का अभाव हो जायेगा, अन्न के लाले पड़ जायेंगे, ऐसी स्थिति यहां नहीं है। खाद्य पदार्थों के निर्यात पर जिस क्षण रोक लगा देंगे, उसी क्षण से हमारी जनता को बिना अभाव के यथेष्ट खाद्य पदार्थ मिलने लगेंगे । इस क्षेत्र में हमें सफलता प्राप्त करनी है तो यहां के व्यापारियों को ऐसे तरीके अपनाने के लिए मजबूर करें कि केवल पेट पालना उनका उद्देश्य न हो, बल्कि व्यापार द्वारा उनको भी मुनाफा मिले और आम जनता को भी कठिनाई न हो । यों खाद्य पदार्थों के उत्पादन को बाहर न भेजकर, गांव और शहरों में जो अभावग्रस्त लोग हैं उनसे उचित काम लेकर, मेहनत के बदले में खाद्य पदार्थों का वितरण करने का प्रबंध करना बहुत सरल होगा ।

अब जगन्नाथ पुरी में, तथा आस-पास के प्रदेशों में भयंकर अकाल पड़ा है । हमारे देश के राजा, महाराजा, जमींदार, जागीरदार, साहूकार, पंडित, शास्त्री, व्यापारी, वकील, बड़े-बड़े अफसर आदि लोग अपनी तोंद फुलाते बढ़िया मिष्टान्न ऐसा ठूंस-ठूंसकर खा रहे हैं कि बदहजमी का शिकार हो जायें, और इस ओर सारी दुनिया में किसी भी देश में ऐसी दुर्दशा नहीं देखी जाती, केवल हमारे देश में लगातार अकाल पड़ता है और अकालग्रस्त लोग मरते-मिटते रहते हैं । इस भंयकर क्षति व घोर अन्याय को दूर करने का कोई उपाय या मार्ग उन लोगों को नहीं सूझ रहा है। इसका ख्याल आते ही मुझे बड़ा दुख होता है। इतनी मुसीबतों के बीच में जाति-पांति का अत्याचार एक और कष्ट दे रहा है ।

इसको नकारा नहीं जा सकता कि निम्न जाति वाले ही ज्यादातर दरिद्र दशा में हैं। वे ही अधिक मेहनती हैं । जो मेहनत करके जीविका ढूंढ़ता है वह वर्ग अत्यधिक सशक्त बनेगा । अन्याय कहां नहीं है ? सारे संसार में व्याप्त है । तो भी हमारे देश के समान

दयनीय दशा और कहीं नहीं ।

इस गांव में (कडैयम) एक धनी घर में किसी विशेष जलसे के लिए शंकर नायनार के मंदिर से हाथी ले आये हैं । वह हाथी अठारह साल का है । सुना है, वह बड़ा दुष्ट हाथी है, इसलिए गांव के लोगों के झुंड उसे देखने आते हैं । आज सवेरे, अपने एक मित्र के साथ मैं भी यह हाथी देखने गया । इसमें खास बात यह थी कि इसके महावतों में से दो ब्राह्मण युवक हैं और एक शैवओदुवार (पुजारी) वंश का है । साधारणतया मुसलमान या हिंदुओं में नीच जाति वाले ही महावत बनते हैं । इस हाथी को तो ब्राह्मण महावत मिले हैं ।

उनमें से एक ब्राह्मण महावत से मैं उस हाथी की प्रकृति पर बातें कर रहा था । नदी में स्नान करने जाते वक्त मैंने, उसे उस हाथी को निदर्यता से पीटते देखा था । इसलिए उक्त घटना की याद दिलाते हुए कहा, "जानवरों के प्रति प्यार का बर्ताव करना चाहिए। निर्दयता से मार-पीटकर उन्हें शिक्षण देना ठीक नहीं ।" बस, मेरा इतना कहना था कि वह अपने शास्त्र-ज्ञान का बस्ता खोलकर लंबा-चौड़ा व्याख्यान देने लगा । वह बोला, "यह हाथी नीच जाति का है । हाथियों में भी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र ऐसे चार प्रधान वर्ण हैं । हर वर्ग की कई उपजातियां भी हैं । इनमें यह हाथी शूद्र जाति का है। शूद्र जाति वालों में 'ईषवर' नाम जाता है न ? वैसे यह हाथी भी 'वीरन' वर्ग का है । ...."

इस तरह उस महावत ने लंबी कथा सुनायी ।

जाति-पांति की भावना हमारे दिलों में कितनी गहराई से पैठ गयी है, इसे दिखाने हेतु मैंने इस बात का जिक्र यहां किया । हाथी को लें, उसमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र का वर्गीकरण । घोड़े में भी ऐसा; अंतरिक्ष के ग्रहों में भी वैसा ही जाति-भेद; रत्नों भी यही वर्गीकरण है

इस तरह जाति-पांति की भावना जहां जड़ पकड़ चुकी है, उस देश में स्वतंत्रता, समानता, व भ्रातृत्व आदि सिद्धांतों को संस्थापित करना मामूली काम है क्या ? एक-दो जाति हैं क्या ? ओह ! कितनी जाति, उपजाति, शाखाएं, प्रशाखाएं हैं ? "परै अठारह हों तो, नुळै एक सौ आठ" अर्थात्, 'परैयर' जात में अठारह शाखाएं, नुळैयर जात में एक सौ आठ उपभेद हैं । अलावा, परैयर, पळ्ळन, चक्किलियन — ये सब अलग-अलग जाति के हैं । एक-दूसरे का सहभोज नहीं करते । विवाहादि संबंध नहीं । ओह ! यह कैसे क्रूर परिहास की विडंबना की बात है । जो कुछ भेद है, वह काफी नहीं कि ऐसे नित्य प्रति नित्य नये-नये भेद-उपभेद सिर उठा रहे हैं । इसमें सुधार लाने के उद्देश्य से प्रेरित कुछ लोग बिना सोचे-विचारे, कुछ और नये वर्गों का निर्माण करते जाते हैं । कडैयम में 'वेळाकजात' के कुछ अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त लोगों ने अपने को द्राविड़ ब्राह्मण घोषित करके, परंपरागत 'पिल्लै' (जातिसूचक नाम) को त्याग कर 'रायर' का नाम जोड़ लिया है। उदाहरणार्थ, अगर किसी का नाम 'अणिडया पिल्लै' हो तो वे उसे सरकारी कानून द्वारा बदलकर 'अणिडयप्प रायर' के नाम से अपना सारा व्यवहार करते हैं । यह 'द्राविड़ ब्राह्मण'

की उपाधि इनको कैसे प्राप्त हुई, इसका पता नहीं लगा पाते। सुना है, कुछ दिनों पहले इसी तरह तंजाऊर में वळकुवरों की सभा हुई जिसमें वळकुवर जाति को उच्च जाति वाले घोषित करके अन्य हरिजन व चमारों को अस्पृश्य बताया और उनको पंचाग आदि सुनाने से मना करके, पर्चा निकाला है कि जो इस नियम का उल्लंघन करें उन पँर नियंत्रण करना है । वळकुवर जाति के श्रीमान विडाला पेरूमाळ इस पर बहक उठे, और जून के 'स्वदेशमित्रन्' में एक रसमय लेख लिखा । वळकुवर जाति वाले असल में परैयार हैं, 'पंचमर' (नीच जाति वाले) हैं और इसको कई प्रामाणिक बातों द्वारा सिद्ध किया । उसे पढ़कर मेरा मन आनंदित हुआ ।

मगर उस लेख में पेरुमाळ नायनार ने बताया है कि चौथा वर्ण वेळकाळों के कुल से 'परैयर' अलग हुए हैं । यह बिल्कुल असंगत लगता है। समझ में नहीं आता, कौन सा आधार लेकर वे ऐसा कह रहे हैं । लगता है, अंतर्जातीय विरोध भावना को लेकर ऐसा कह रहे हैं । वैमनस्य और वैर-विरोध से कोई भलाई न होगी ।

सभी वर्गों को उचित शिक्षा दी जाये तो सभी समान बुद्धि वाले बन जायेंगे । मांसाहार करने वाले मांसाहार छोड़ दें, फिर तो स्वामी विवेकानंदजी के कथनानुसार सबको एकदम ब्राह्मण बना सकते हैं । सुसंस्कारों द्वारा निम्न जाति वालों को ब्राह्मण बना सकते हैं, इसके लिए हमारे वेदशास्त्रों में कई प्रमाण मिलते हैं । सारे भारत को इस प्रकार ब्राह्मण देश बना दें तो अच्छा होगा – यही मेरा विचार है । चाहे कोई किसी भी जाति का हो, उसे निरामिष भोजी बनाकर यज्ञोपवीत करायें, गायत्री मंत्र की दीक्षा दें । फिर उसे ब्राह्मण मानना होगा, यही विवेकानंदजी का कहना है । एक हद तक यह एक अच्छा उपाय भी है । लेकिन उच्च जाति वाले अपनी कुलीनता का ख्याल छोड़कर निम्न जाति वालों से मिलजुलकर रहें, वह इससे भी श्रेष्ठ मार्ग है ।

पुरातन संसार

यह संसार अति प्राचीन है । इसका रूप नया सा लगेगा । प्रकृति पुरातन है; एक नीम का वृक्ष मिटेगा; एक और नीम का वृक्ष पनपेगा । नीम वृक्ष अमर है । जब तक धरती रहेगी ईसी तरह धूप रहेगी। वर्षा, हवा, जन्म, मरण, रोग, निवारण, बंधन, मुक्ति, भलाई, बुराई, सुख, दुख, भक्ति, वेदना, व्यथा, भूल आदि सब शाश्वत हैं – अजर, अमर हैं ।

साधन बदलते रहते हैं; प्रकृति गतिशील है । यह क्यों कहता हूं, जानते हो ? स्कूल में कुछ लड़के कहते रहते हैं कि आकाश से एक नयी सभ्यता टपक पड़ी है, जिससे हम अज्ञात हैं । लेकिन मुझे इस बात पर विश्वास नहीं । यह संसार अति प्राचीन है।

निर्धनों के लिए हमेशा दुख है । धनी को कई प्रकार की सुख-सुविधाएं प्राप्त हैं । मंदिर के रक्षक को कोई अभाव नहीं । देवताओं की शिला-मूर्तियां ज्यादातर आधे पत्थर आधे देवता हैं । पूरे के पूरे देवता बने रहते तो तत्क्षण कृतयुग न आ जाता ?

हर देश में हर समय पर यही क्रम चलता रहता है । जिसका हाथ ऊंचा है उसके पौ बारह । अभावग्रस्तों के लिए ही सारी मुसीबतें हैं ।

धनी-निर्धन का यह भेद पहले-पहल कैसे हुआ ? कृषक, सैनिक – इस प्रकार मानव जाति क्यों विभाजित हुई ? सब मिले-जुले कृषि द्वारा जहां जीविका चलाते रहे वहां किस कारण से यह भेदभाव जन्मा था ? यह सब विचारने योग्य बातें हैं । अभी इनके लिए समय नहीं । केवल धनी, निर्धन की बात पर इस समय विचार करें।

एक चेट्टी (बनिया) ने व्यापार में घाटा हो जाने पर बड़े दुख से अपने घर के पुरोहित से पूछा – "महाराज ! धनी होने के लिए क्या करना चाहिए ?"

अय्यर ने नवग्रह की पूजा करने को कहा ।

"इसमें कितना धन लगेगा ?" ऐसा चेट्टी ने पूछा तो उत्तर मिला, "दस अशर्फियां"। इस पर चेट्टी ने बताया, "इस समय तो मेरे पास कोलुंबु का सिक्का, नारियल की मुद्रा वाला, एक भी नहीं । इस हालत में क्या उपाय करने से पैसा मिलेगा ? इस पर आपका शास्त्र क्या कहता है बताइये ?"

पुरोहित ने कहा, "पिछले जन्म में तुमने ब्राह्मणों को खूब दान नहीं दिया होगा । इसीलिए इस जन्म में तुम्हारा यह हाल हो गया है । इसके लिए हमारे शास्त्र में कोई प्रायश्चित नहीं. । इस जन्म में कोई पुण्य कर्म करोगे तो अगले जन्म में धन संपत्ति प्राप्त होगी ।"

पुरोहित जी के उपाय चेट्टी के गले नहीं उतरे । हां, मुझे भी यह उपाय लाभदायक

नहीं लगता । अगले जन्म में मुझे मानव जन्म मिले और धन-संपत्ति का सुख मिले, उससे अब मेरा कोई लाभ नहीं। इस बात पर मुझे श्रद्धा भी नहीं । इस जन्म में धन-प्राप्ति के प्रयत्न में लगना ही न्यायसंगत है । अगले जन्म में मिलने वाले धन के लिए अब से रुपया बांटना मूर्खता है ।

कोई भी जानवर या पशु-पक्षी, दल या गुट बनाकर अपने कुल का नाश स्वयं करते हैं, ऐसा तो देखा नहीं गया । लेकिन केवल मनुष्यों में ही चिरकाल से यह आदत बनी हुई है । होमर के जमाने से लेकर कांस्टनटैन के राजा के समय तक यमन देश में युद्धों का अंत नहीं हुआ । तूफानी रातों में भी चोरियां होती रहतीं । हर युग में दुष्कर्म चलता रहता है। विषमोचन, रोग-निवारण, निर्धन को धन, मूर्खता के लिए शिक्षा हर वक्त ढूंढ़ी जा सकती है । निवारण ढूंढ़ना ही है तो उसके लिए उपाय भी हर वक्त, अपरिवर्तनशील रहता है । मनुष्य केवल साधनों को बदलते हैं । इसके अलावा इसकी प्राचीनता का अनुकरण ही करते हैं, छोड़ते नहीं ।

एक व्यापारी को लाभ प्राप्त होता हो तो एकदम सौरमंडल तक छलांग मारने लगता है । पुरानी रीति के अनुसार क्रमशः कदम-कदम पर बढ़ते जाना होगा । अधीरता से काम बिगड़ जायेगा । धीरे-धीरे जो बढ़ता है वही लक्ष्य तक पहुंचेगा । पुरातन मार्ग ही अच्छा मार्ग है । वह चिरकाल तक अनुकरणीय मार्ग है। संसार में हर काम, नियम रूप से क्रमशः आगे सीढ़ी-दर-सीढ़ी बढ़ता जाता है । छलांग मारें तो धड़ाम से गिर पड़ेंगे । पतंगा लपककर उछल पड़ता है । सूर्य तो नियमित गति से संचालित होता है । नियत मार्ग से न बदलता है न फिसलता है, अनवरत् गतिशील है, अविरल गति से वह बढ़ता जाता है, बढ़ता जायेगा। पुरातन मार्ग ही हर व्यापार के लिए सही मार्ग है ।

पशु-पक्षी

"कोल्ला विरद्म कुवलयमेल्लामोंगी,
येल्लोरक्कुम् सोलवदेन इच्छै परापरमे"
(तायुमानवर्)

विशिष्ट वेदांतज्ञ एवं व्यवहारकुशल मेरे एक मित्र (उनका यहां गोपाल पिल्लै उपनाम दे रहा हूं) आज मेरे पास आये और बातें करने लगे ।

उन्होंने मुझसे कहा, "आप पत्रकार हैं तो सही । लिखते वक्त किसी का दिल दुखायें बिना लिखना ही उत्तम है । 'इनचोल्लाल अन्द्री इरुनीर वियनुलकम् वनचोल्लाल एन्द्रम मळिळादे' अर्थात् , यह धरती और स्वर्ग मधुर वचन द्वारा ही आनंदित होते हैं, कटुवचन से नहीं । दूसरों के दिल को ठेस पहुंचाये बिना बहुत कुछ लिख सकते हैं । आपके लेखन का उद्देश्य, संसार का सुधार करना, लोगों को यथासाध्य भला बनाना है न ? यदि आपको वह अपना उद्देश्य शीघ्र पूरा करना है, तो आपको चाहिए कि अपने विचार व सिद्धांतों को बिना उत्तेजित किये, क्रोधरहित शांत भाव से अपने-पराये के विचार के बिना, किसी का दिल जरा भी न दुखाकर मधुर मीठे शब्दों में प्रस्तुत करें यही उत्तम मार्ग है।"

इस पर मैं बोला, "वाह ! आपने लाखों में एक बात कही है । मेरी निजी राय भी यही है । मगर स्त्रियों की दशा, निम्न जाति वालों की करुण स्थिति, पशु-पक्षियों व निर्धनों की कठिनाइयों पर लिखते वक्त या अन्य दलित पीड़ित वर्ग के प्रति बिलकुल निर्मम होकर, निर्दयता से अत्याचार करनेवालों पर कभी-कभी अनजाने ही गुस्सा आ जाता है । लेकिन इस क्रोधावेश को भी निकट भविष्य में संयमित करने की कोशिश करूंगा और जिस प्रकार अपने बताया है वैसा करने का प्रयत्न करूंगा । क्योंकि जैसा आपने कहा है, क्रोधपूर्ण शब्द हमारे उद्देश्य की प्राप्ति में स्वयं बाधा बन जाते हैं । गाय, बकरी का मांस खानेवालों को हम मनमानी गाली दें तो मांस-भक्षण की उनकी आदत तो छूटेगी नहीं, हमारे प्रति द्वेष भावना अलग बढ़ेगी। इसके विपरीत हमारे पक्ष में जो न्याय है, उसकी ओर उनका ध्यान आकृष्ट करके, उनकी करुणा को उद्दीप्त करें, तथा प्रार्थना करें । इसी से वे लोग हमारे विचारों की ओर उन्मुख हो सकते हैं । यही उत्तम उपाय है ।"

मित्रवर बोले, "पशु-पक्षियों को मारकर खाने के अन्याय का स्मरण करते ही मुझे अपार दुख और क्षोभ होता है । क्या आपने उनको काटने का दृश्य देखा है ? बकरी गला

काटते समय गरदन को हिला दे तो गले पर मार ठीक न पड़ेगी । इस ख्याल से उसके सामने हरे पत्ते डालते हैं । हरे पत्ते पर मुंह मारने के समय गरदन सीधी होती है तो झट एक ही मार से उसका सिर धड़ से अलग कर देते हैं । यह दृश्य देखते वक्त उस बकरी का गला काटने वाले पर हमें बड़ा गुस्सा आता है। उसे क्षमा करना भी कठिन हो जाता है। इतनी आसानी से एक बकरी को मार डालते हैं । मगर क्या वे एक बकरी को भी प्राण दिला पायेंगे ?

कुछ दिनों पहले शंकरनायनार मंदिर के पास के एक गांव में गया था। वहां एक माडन मंदिर में भारी भीड़ एकत्रित होकर पूजा कर रही थी । उस मंदिर का देवा 'माडासामी' कौन था, जानते हैं ? सुना था, उस गांव में कई साल पहले एक मरवन था । वह तो लूटपाट, खून हत्या करने वाला, निडर, साहसी मगर दीन-दुखियों पर दया दिखाने वाला कृपालु था। उसके मरने पर उसकी समाधि बनाकर, उस पर एक मंदिर खड़ा कर दिया गया । अब गांववाले उस मरवन माडन की ही माडासामी के रूप में आराधना कर रहे हैं । कौतूहल-वश, उत्सव देखने मैं भी अपने मित्रों के साथ वहां गया था । वहां पर बीसियों सूली खड़ी करके, उन पर बकरियों को बांध रखा था। उन सूलियों पर अधमरी बकरियों को छटपटाते मैंने नहीं देखा था। उस वक्त देखता तो न जाने मेरे मन की क्या दशा हो जाती ! वे बकरियां अब मृत थीं । खून और चर्बी टपक रही थी । ओह ! उस दृश्य की याद करके अब भी मेरा रोम-रोम खड़ा हो उठता है । ओह ! कैसा घोर पातक है यह !" यों विलाप करते हुए मेरे मित्र गोपाल पिल्लै बहुत दुखी हुए ।

इस पर मैंने कहा,"सुना है, कुछ दिन पहले फारस के कठपुतली बादशाह 'शा' बगदाद आये थे । अर्थात्, यूरोप का भ्रमण करके स्वदेश लौटते वक्त बगदाद नगर में पधारे थे। तब उनके स्वागतार्थ बगदाद नगर में अस्सी या सौ बकरियों का वध हुआ । यह समाचार 'स्वदेशमित्रन्' पत्रिका में छपा है । उसे पढ़ते वक्त मेरे पेट में ज्वाला सी भभक उठी । लेकिन हमारे देश में छुट-पुट देवी-देवताओं के मंदिरों में पूजा-पाठ के समय कहीं एक हजार, कहीं दस हजार बकरियों की बलि चढ़ाई जाती है – यह ख्याल आते ही मैं अपने गुस्से को रोक नहीं पाता ।

सुना है, तिरुनेलवेली के निकट 'कुरंगिनी अम्मन' का देवालय है । वहां वार्षिक उत्सवों के समय असंख्य बकरियों की बलि चढ़ाई जाती है ।

इसी तरह मद्रास शहर के पास के एक गांव में देवी का मंदिर है । यह क्या ? हमारे देश में ऐसे असंख्य मंदिर हैं । इनमें दिन-प्रतिदिन जो बलि चढ़ाई जा रही है उन्हें रोक दीजियेगा । उन मंदिरों के धर्मकर्ताओं और समाज के नेताओं से सविनय प्रार्थना करने के लिए पत्रिकाओं में लिखने का इरादा है । आप तो कह रहे थे कि क्रोधपूर्ण शब्द उगलने और गाली देने में कोई लाभ नहीं। कहिये, हम क्या करें ?"

हम दोनों बड़ी देर तक जीव-हिंसा द्वारा होने वाले सर्वनाश, हिंसा कार्य द्वारा होते पाप, रोग, मृत्यु इत्यादि पर चर्चा करते रहे । संभाषण का पूरा विवरण देने के लिए यहां स्थान

नहीं । फिर भी गोपाल पिल्लै से किये वायदे के अनुसार यहां हाथ जोड़कर प्रार्थना करता हूं – तमिलनाडु के नेतागाण ! आपके पैरों पड़कर कोटि-कोटि नमस्कार करता हूं । मांसाहार को बंद करने का कोई न कोई मार्ग निकालियेगा ।

अनंत शक्ति

चींटी मृत पड़े कीड़े को खींचकर ले जाती है । कैसे ? अपनी शक्ति के बल पर । धूमकेतु लाखों मील लंबी पूंछ को घसीटता हुआ अंतरिक्ष में तूफानी गति से घूमता रहता है; कैसे ? अपनी शक्ति के बल पर । उस धूमकेतु को 75 वर्ष में एक बार चालीस दिन तक सूर्य अपने चारों ओर घुमा लेता है । कैसे ? अपनी शक्ति के बल पर ।

एक युवती गाती है । नेपोलियन ने सारे यूरोप को जीत लिया । इन दोनों का मूलाधार उनकी अपनी शक्ति है । पंडितों ने अन्वेषण किया है कि आंखों एवं बुद्धि के लिए जो गोचर और अगोचर है, वह बाह्य संसार सीमाहीन है । इस विस्तृत, विशाल, आदि-अंतरहित संसार का जो शक्ति संचालित कर रही है वह शक्ति भी असीम है, अनंत है, कल्पनातीत है । यदि मानव भी ऐसी शक्ति की साधना करे तो बड़ा लाभ मिलेगा । 'यत्‌भावयसि तत् भवसि' अर्थात्, तुम जो बनना चाहते हो वह बनते हो ।

यह न समझना कि यह साधना बिल्कुल मामूली है और आसान बात है । जीवंत और ज्वलंत श्रद्धा लिये साधना में लीन होना चाहिए । दहकते अंगारे सी प्रज्ज्वलित भक्ति से ध्यान करना चाहिए । इसे कोई झूठी-मूठी बात नहीं समझनी चाहिए। नियमित रूप से इसे अपने अनुष्ठान में लायें तभी इसकी महत्ता मालूम होगी ।

ज्ञानी और योगी ऐसी कई कठिन साधनाओं के अभ्यास द्वारा ही शक्ति-संपन्न होते हैं। साधारण लोग जो इस प्रकार की साधनाओं से अपरिचित हैं, स्वाभाविक रूप से प्राप्त शक्तियों से युक्त रहते हैं। जो भी हो, बिना शक्ति के कोई जी नहीं सकता । क्षण भर भी सांस नहीं ले सकता ।

खुली हवा में घूमने तथा उसका संयोग पाने से शक्ति अर्जित होती है । शरीर को श्रम पर लगाने से, शून्य में व्याप्त शक्ति शरीर में प्रविष्ट होती है। बुद्धि को कई विषयों पर लगाकर, श्रद्धापूर्वक, चिंतन-मनन करने से शक्ति प्राप्त होती है । इस तरह थोड़ी-थोड़ी करके जो शक्ति संचित होती रहती है, उसी के बल पर इस संसार में लोग जीवित रहते हैं ।

तमिलनाडु के लोगों को और सशक्त बनाना है, उनकी शक्ति को और बढ़ाते जाना है, यही मेरा उद्देश्य है । इस लक्ष्य को पूरा करने के लिए ही मैं जीवित हूं। हममें हर एक को यही प्रार्थना करनी है कि हे माता ! इस देश के लोगों को सशक्त, सबल बना दो। इस लक्ष्य को कार्यान्वित करने की शक्ति मुझे प्रदान करो । खेलकूद, मल्ल युद्ध, गाना,

बजाना, नाटक खेलना, तर्क-वितर्क करना, तपस्या, ब्रह्मचर्य व्रत, सफाई इत्यादि के द्वारा एक जाति शक्ति-संपन्न होती है । उसका बल बढ़ता है। मन, वचन, कर्म तीनों को पवित्र रखना अति आवश्यक है हृदय एवं व्यवहार को पवित्र रखने का अभ्यास करना है। भय, संदेह, चंचलता—इन तीनों से घृणा करनी है। दूर रहना है । उक्त नियम के पालन द्वारा शक्ति संचित होगी।

पुरातन संप्रदाय होने से कोई बात झूठी नहीं होती । नवीन होने मात्र से किसी बात को सच मान बैठना भी गलत है । किसी विषय की सत्यता या असत्यता उसकी छानबीन करके देखने पर तथा अनुभव द्वारा ही हमें मिल सकती है । हमारे पूर्वजों ने योग मार्ग की ओर पथ प्रदर्शित किया है । यह हठयोग, राजयोग, भक्तियोग और ज्ञानयोग चार प्रकार का है। इनमें हठयोग द्वारा फल-प्राप्ति कम है। अन्य तीनों की साधना द्वारा अनंत शक्ति प्राप्त कर सकते हैं । किसी विषय पर गहरा ज्ञान एवं अनुभव प्राप्त करने के पहले ही, कोई विवेकशील व्यक्ति ऐसा संदेह न करे कि आखिर उससे क्या फल मिलने वाला है ? हमें गहराई में पैठकर छानबीन करके देखना चाहिए । जिन्होंने ऐसी कड़ी साधना की है उन्हें अपूर्व, अलौकिक शक्ति प्राप्त करते हमने आंखों से देखा है । हम भी ऐसी शक्ति क्यों न प्राप्त करें ? तमोगुण में लिप्त रहकर आखिर हमने कौन सा सुखभोग किया है ? आलस्य एवं विषय वासनाओं के पीछे पड़कर, मन को सागर में पड़े तिनके के समान आकुल-व्याकुल करके, कौन सी सुख-सुविधाएं और वैभव पा लिया है ?

धैर्य, हृदय की पवित्रता, किसी एक महान लक्ष्य पर पूरी लगन के साथ मन तथा बुद्धि का एकाग्र चिंतन, लाभ-हानि की चिंता न करना — यही योग का रहस्य है ।

तमिल भाषा

कलकत्ता से प्रकाशित होने वाली मासिक पत्रिका 'माडर्न रिव्यू' के पूस (मार्गशीर्ष) अंक को कल यों ही उलट-पुलटकर देख रहा था । उसमें तिरुनेलवेली हिंदू कॉलिज के इतिहास के प्रोफेसर श्री नीलकंठ अय्यर ने एक छोटा सा पत्र लिखा है । उस पत्रिका में प्रकाशित श्री यदुनाथ सरकार के लेख पर उन्होंने अपनी राय प्रकट की है ।

श्री यदुनाथ सरकार ने अनुभव के आधार पर लिखा था कि कॉलिजों में इतिहास को अंग्रेजी में पढ़ाना अनावश्यक झंझट है । यदि देशी भाषाओं में इतिहास पढ़ायें तो बहुत लाभ होगा । इस पर तिरुनेलवेली के पंडित महाशय कहते हैं — भाषा की यह झक-झक बड़ा सिर-दर्द बन गयी है । मेरे जिले में, जहां तक मेरे कॉलिज की बात है, यह कहना मुश्किल है कि अंग्रेजी के बदले प्रादेशिक भाषा में इतिहास पढ़ाना अधिक लाभदायक रहेगा। मेरे विद्यार्थी अंग्रेजी में यद्यपि व्याकरण एवं प्रयोग की गलतियां अधिक करते हैं, फिर भी उनका अंग्रेजी ज्ञान तमिल से अच्छा है। तमिल की अपेक्षा अंग्रेजी पर मेरा अधिकार अधिक है । इसलिए इतिहास अंग्रेजी में ज्यादा अच्छी तरह पढ़ा सकता हूं ।

श्री नीलकंठ अय्यर की इस हालत पर मुझे बहुत खेद है । ओह ! जिन्हें अपनी मातृभाषा में ठीक तरह से बोलना, समझना तक नहीं आता उनको इतिहास का प्रोफेसर बने देखकर तथा विभाग चलाने का हास्यास्पद अधिकार प्राप्त होना हम इसी देश में पाते हैं । ओह ! कैसी निराली बात है । वाह ! वाह !

इसके अलावा कि मातृभाषा का अपना ज्ञान अधूरा है, इस बात को बंगाल की पत्रिका में क्यों लिखा है ? यह तो मेरी समझ में नहीं आ रहा । जापानी, चीनी, नार्वे के लोग तथा दुनिया के विभिन्न देशों के लोग हमें, शास्त्रज्ञान, भाषाज्ञान एवं बुद्धि में हीन और हेय मानते आ रहे थे । अभी हाल की ही बात है कि भारत के कुछ विद्वान अपनी प्रतिभा द्वारा दुनिया को बता रहे हैं कि हम न जंगली हैं, न पूंछहीन बंदर हैं । हमारी अपनी भाषाएं हैं, बड़े-बड़े कवि हैं, विशिष्ट शास्त्रज्ञ एवं पंडित हुए हैं । इसी बीच हममें से कुछ लोगों का यह ढिंढोरा पिटवाते देखकर मुझे हंसी आती है कि तमिलनाडु हिंदुस्तान के दूसरे प्रदेशों से पिछड़ा हुआ है ।

मैं, अपना कुछ निजी विचार बता दूं तो अच्छा होगा ।

दुनिया भर के लोगों में हिंदुस्तान के लोग बुद्धि एवं प्रतिभा में विशिष्ट हैं । हिंदुस्तान

के लोगों के लिए हम तमिल वाले शिरोभूषण के समान हैं । मैं चार-पांच भाषाओं का ज्ञान रखता हूं । इनमें तमिल जैसी सशक्त, समृद्ध, प्रतिभासंपन्न, मर्मस्पर्शी भाषा और कोई नहीं है ।

तमिल जाति की बुद्धि, प्रतिभा एवं कीर्ति से आज का बाह्य संसार बिलकुल अपरिचित है, यह तो मैं जानता हूं । इसकी कीर्ति बाहर नहीं फैली है । यह भी मुझसे छिपा नहीं है कि बीते दिनों में तमिल जाति के ज्ञान की प्रखर ज्योति कुंठित हो गयी थी । जो बीत गयी सो बात गयी । शीघ्र ही तमिल का ज्योतिर्मय आलोक सारे विश्व में प्रसारित होगा, यदि न हो तो मेरा नाम बदल देना ।

तब तक यहां के पंडित लोगों से प्रार्थना है कि अगर उन्हें तमिल नहीं आती तो कृपया चुपचाप बैठे रहें । ऐसे शब्द न कहें जिससे और लोग तमिल को हेय और तुच्छ मानने लगें। बस, इतनी ही उनसे मेरी विनती है ।

स्वतंत्रता

महान कवि तिरुवळ्ळुवर ने धर्म, अर्थ, काम – तीनों पुरुषार्थों को एक हजार तीन सौ तीस 'कुरळ' (छोटा सा छंद) से संजो रखा है, उनकी इस अद्भुत क्षमता पर मुग्ध होकर कुछ लोगों ने औवैयार से उनकी अलौकिक प्रतिभा की प्रशंसा की । तब औवैयार ने चारों पुरुषार्थों को एक ही 'वेणवा' (एक छंद का नाम) में गाकर दिखाया था ।

"ईदल अरम्, तीविनै विट्टिडल पोरुळ;
एंगञ्ञांद्रम्, कादलिरुवर करुत्तोम्त्रमित्तू-दानरवु
पट्टने इन्बम्; परनै निनैन्दि इम् मूद्रम,
विट्टदे पेरिन्ब वीड् ।"

कविता का दान हो या देश का हो, धन, शिक्षा, दवा, धैर्य आदि अच्छे सद्विषय या वस्तु से जो संपन्न है उसे चाहिए कि वह इन चीजों की जिसे अपेक्षा हो उसे दे दे, बस यही धर्म है। सामान्यतः संसार में संपन्न, समान, आकिंचन – इस प्रकार के तीन वर्ग देखने में आते हैं । इन तीनों वर्गों के लोगों को जो दान देना होता है, वह देश के अनुसार बदलता रहता है। दानशील, धर्मनिष्ठ व्यक्ति जानता है कि कब, किसको, क्या-क्या देना है । जो संचित किया जाता है वही धन है । मनुष्य को सुख पहुंचाने वाली वस्तुएं, तथा उसे प्राप्त करने के लिए उत्तम साधन रूपी धन को संग्रहित करके रखना है । लगातार संचित करते जाना है। मगर बुरे कर्म द्वारा, गलत ढंग से कमाया धन हमेश टिका नहीं रहता । धन संग्रह करने के उपरांत, उसके बल पर जो दूसरों का बुरा करते हैं वे शीघ्र ही बरबाद हो जायेंगे। तिरुवळ्ळुवर ने कहा है, "अल्लल पट्टाद्रादु अळुद कण्यणीरंद्र सेल्वत्ते तेय्यकुम् पंड।"

"सताये हुए व्यक्तियों के आंसू सताये जाने वालों, उनकी पीड़ा और दुख के कारण बनने वालों के ऐश्वर्य को काट देनेवाला अस्त्र है ।" संपत्ति सुखदायक है। वह प्रयत्न द्वारा संचित होती है। सार्थक कर्म को लगन एवं उत्साह के साथ मनोयोग से करते जायें तो संपत्ति अर्जित करना असंभव है । औवैयार का कहना है कि किसी की बुराई न करके, जो उपार्जन किया जाता है वही असल में धन है, अन्य सब दुखदायक एवं क्षणभंगुर माया है।

स्त्री-पुरुष परस्पर प्रेम करते रहें वही जीवन के समस्त सुखों में श्रेष्ठ सुख है । खान-पान,

स्नान, सुगंध लेपन, फूल आदि की सुखानुभूतियों की अपेक्षा प्रणयानुभूति ही अपने में विशिष्ट है । प्रणयी युगल, एक मन होकर जिस अलौकिक आनंदानुभूति का अनुभव करते हैं, उसे मनुष्य अपने विधि-विधानों के नियंत्रण, धन के मद व अनीति द्वारा प्राप्त करना चाहते हैं । स्त्री-पुरुष के संयोग द्वारा प्राप्त दुख ही इस संसार की समस्त व्यथाओं से अधिक बढ़ गया है । कुछ देशों में वैवाहिक प्रथा को नरक तुल्य बना रखा है । ईश्वर प्रदत्त अलौकिक सुख को मानव अपने अज्ञान एवं पाप चिंतन द्वारा नरक की यातना बना लेते हैं ।

ईश्वर पर अटल विश्वास रखकर, तीनों पुरुषार्थ प्राप्त करना, उन्हें अपने पास रखना, या मानना आवश्यक नहीं है, जो होना है वह होगा, ऐसे निर्लिप्त भाव से, ईश्वरीय इच्छा पर छोड़कर निश्चल रहना ही मोक्ष का सुख है। चाहे जितना भी दुख सहना पड़े, विचलित न होकर, चिंता को एकदम भस्मसात् करके, ईश्वर के ध्यान में मग्न रहना ही मोक्ष अर्थात् स्वतंत्रता है । गीता में कहा है, "सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं चरणम् व्रज ।"

मूढ़ लोगों का विचार है कि इस प्रकार मुक्तात्मा लोग साधु बने, फटेहाल, भीख मांग कर पेट भरते रहेंगे । यह विचार तो बिलकुल गलत है । हजारों में एक मुक्तात्मा ऐसे साधु का मार्ग चाहे तो अपना सकता है । मगर केवल वही मार्ग है, ऐसा नहीं समझना चाहिए । जनक ने जीवन-मुक्त होकर राज्यपालन किया था । अर्जुन तथा अन्य ऋषि, पत्नी और बाल-बच्चों के साथ सुखद जीवन बिताते थे । मुक्तात्मा हर प्रकार के काम-धंधे में लगे रहने पर भी अकेले ईश्वर पर अचल, अटूट भक्ति बनाये रखते हैं । पूर्वजों का कहना है, "एत्तौळिलै चेय्दालुम्, एदवस्थैपट्टालुम, मुक्तर मनमिरुक्कु मोनत्ते ।" (चाहे जो कर्म करें, कितना भी कष्ट झेलें, जीवनमुक्त जनों का मन ईश्वर के ध्यान में लीन रहेगा ।) औवैयार का कथन है कि ईश्वर के ध्यान में अन्य तीनों पुरुषार्थों को त्यागना ही मोक्ष का सुख है । निर्लिप्तता ही मुक्ति है । वैराग्य व विरक्ति ही संन्यास है । निष्काम्य, निर्लिप्त मानव को पहचानें कैसे ? भक्ति की परिपक्वता का लक्षण क्या है ? वेद कहता है, 'निर्भय रहो' । निर्भय रहना ही मुक्तावस्था का लक्षण है । कोई सच्चे दिल से भगवान पर भरोसा रखता है, या केवल दिखावा है, यह जानना हो तो आफत की घड़ियों में उसकी परख हो सकती है। आफतों से घिरे रहने पर भी जो घबराता नहीं वही ज्ञानी, भक्त, जीवनमुक्त, मृत्युंजयी है तथा वही भगवान का सच्चा शरणागत है । यदि हम भगवान पर भरोसा रखें तो हमें कोई दुख बाधा नहीं पहुंचा सकता । इस प्रत्यक्ष ज्ञान का बोध जिन्हें है, वे जीवनमुक्त लोग जिस किसी पदवी पर हों अद्वितीय बने रहेंगे ।

सभ्यता का मूल स्रोत

(कालविलक्कु शीर्षक लेख का एक अंश)

आप जानते हैं कि श्री क्लामोन्सो जो कभी फ्रांस के मुख्यमंत्री थे; कुछ दिनों से भारत में भ्रमण कर रहे हैं । कुछ दिनों पहले बंबई में इनके सम्मानार्थ जो भोज दिया गया, उसमें उनके द्वारा दिये गये भाषण का निम्नलिखित अंश हमारा ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करता है ।

'फ्रांस के लिए जिन्होंने अपना खून बहाया था, उनकी जन्मभूमि के दर्शन करके मैं गर्व का अनुभव करता हूं । फ्रांसीसी परिवारों में भारतीय सिपाहियों को रहते मैंने देखा है। उनकी सुशीलता और स्नेह ने फ्रांसीसियों का दिल मोह लिया था । प्राच्य दिशा सभ्यता में पिछड़ी नहीं । मानवता, प्रेम आदि आदर्श हमें प्राच्य देशों से ही प्राप्त हुए । पश्चिम वालों ने उनको अपनाकर उन्हें अपना लक्ष्य बना लिया था इसलिए आप लोगों से बढ़कर हम अपने आप को एक विशिष्ट, उन्नत सभ्यता का प्रतिनिधि मानकर मैं आप लोगों को संबोधित नहीं कर रहा हूं , अपितु मैं स्वीकार करता हूं कि मैं सभ्यता के मूल स्रोत की ओर बढ़ आया हूं ।'

ये महाशय कौन हैं ? हाल ही में ये फ्रांस के मुख्यमंत्री के पद से अलग हुए हैं । केवल साहित्य के विद्यार्थी ही नहीं, लौकिक और व्यावहारिक बातों के अच्छे ज्ञाता हैं । यूरोप के राजीनतिक क्षेत्र में विख्यात हैं, विज्ञ पुरुष हैं । दस साल पहले, स्वयं इनके मुंह से ये शब्द न निकले होंगे । दो साल पहले भी शायद ऐसा न सोचा होगा । यही मानते होंगे कि यूरोपीय सभ्यता ही सबसे श्रेष्ठ है । आज भारत आने के बाद, यथा साध्य, तटस्थ भाव से देखकर, यह विचार इन पर हावी हो गया है । अपने भाइयों से प्रार्थना है, जरा इनके भाषण को ध्यान से पढ़ें । ये महाशय क्या कहना चाहते हैं ? यूरोपीय सभ्यता के चिरंतन आदर्श और उन्नत धर्म जिन्हें वे भविष्य में पूरा करना चाहते हैं, यूरोप की बपौती नहीं; इसके विपरीत वे तो प्राच्य देशों से उन्हें मिले थे – यही उनका कहना है । हां – वे इसे स्पष्ट रूप से मानते हैं कि हमने ही यूरोप को आदर्श एवं धर्म का दान दिया है, हमारी यह सहायता न मिलती तो वे आज भी नंगे शरीर पर गोंद लगाये फिरते जंगली बने रहते । एशिया से सभ्यता यूरोप में फैली । एशिया की सभ्यता का मूलस्थान हमारा भारतवर्ष है। लेकिन एक बात है – प्राचीन काल में हम चाहे कितने भी उन्नत रहे हों

और दुनिया की उन्नति के लिए सहायता दी हो, आज हमारी दशा शोचनीय बनी रहेगी तो किसी के दिल पर अपने गरिमामय अतीत का प्रभाव छोड़ नहीं पायेंगे । आज हमारा भारत फिर से अपने अद्वितीय ज्ञान और तेजस्विनी शक्ति को लिये सीना ताने खड़ा रहता तो अच्छा होता। तभी तो श्री क्लामोन्सो जैसे विद्वज्जन उसकी प्रशंसा का पुल बांध रहे हैं । यह साबित हो चुका है कि हम दुनिया का पथ प्रदर्शन करने योग्य हैं, मगर अब तक इस स्थल पर हमारा पैर जमा नहीं है । श्री क्लामोन्सो ने कहा है कि पश्चिमी देशों के जैसे, यहां भी लोग, परस्पर प्रेम व स्नेह से रहने के ईश्वरीय आदेश को भूलकर परस्पर दुश्मनी, विरोध और हत्या पर तुले हुए हैं, यह देखकर मुझे बड़ा दुख हो रहा है । लेकिन मैं दावे के साथ कहता हूं कि आज भारत के वायुमंडल में जिस सात्विक धर्म की वायु फैलती जा रही है, उसमें सांस न लेते तो श्री क्लामोन्सो के मुंह से ये शब्द शायद ही निकलते। यदि अब वे पेरिस में होते तो वहां पर व्याप्त जर्मनी-विरोधी हवा इनको भी अपनी चपेट में ले लेती और इनकी बुद्धि को सात्विक धर्म की ओर झुकने न देती ।

प्रेम रूपी धर्म को लिये भारत, दुनिया का पथप्रदर्शन करे, यह विचार जोर पकड़ने लगा है । इसका प्रथम प्रस्फुरण ही इतना आश्चर्यजनक है कि दुनिया इस पर विस्मित हो उठी है । भगवान ऐसी कृपा करें कि निकट भविष्य में यह सिद्धांत भारतवासियों के जीवन में, उनके जीवन-सिद्धांत समस्त क्षेत्रों में संस्थापित हो जायें ।

चतुर्थ खंड - तत्व

अगला कदम

जो कुछ बीत गया, सो गया । अब आगे की सोचनी है ।

हमारे देश की जनता को अगर मंदिर के पुजारियों को सहयोग देना है, आदर करना है, तो उनको जनता से कोई बात छिपाये बिना, धोखा दिये बिना सीधे स्पष्ट रूप से विषय को पेश करना चाहिए ।

आप पूछ सकते हैं – ईश्वर सर्वव्यापी है । सारी सृष्टि में ईश्वर है न ? तो फिर मंदिर बनाकर, पत्थर और धातु की मूर्ति प्रतिष्ठित करके, वहीं पर सबको ईश्वर की आराधना करनी चाहिए ऐसे नियम एवं व्यवस्था क्यों ? उत्तर है – जनता में ऐक्य भावना को प्रोत्साहित करने के लिए यह व्यवस्था है।

केवल पत्थर की मूर्ति में देवता है, इस प्रकार दृढ़ विश्वास रखने पर क्या हम मान सकते हैं कि अपने चारों तरफ चलते-फिरते लोगों में भगवान नहीं है ?

ध्यान दो । संपूर्ण ब्रह्मांड में व्याप्त होकर, उसे संचालित करने वाली वह ज्योतिर्मय शक्ति ही, हमारे चारों तरफ व्याप्त अनंत कोटि जीवधारियों के रूप में प्रकट होती है । यही वेदों का कहना है ।

'अपने में संसार को और संसार में अपने को जो देखता है वही चक्षुधारी है अर्थात् दर्शक है' – यह पूर्व पुरुषों का सिद्धांत है ।

तुम्हारी आत्मा और संसार की आत्मा दोनों एक हैं। तुम, मैं, मगर, कछुआ, मक्खी, गरुड़, गधा, भैंस ... सब में एक ही प्राण है । वह प्राण ही परमात्मा है ।

लोग सम्मिलत रूप से ईश्वर की आराधना करने जायें तो, मनुष्यों में मिलजुलकर एक होने की भावना आयेगी तथा आत्म ऐक्य का बोध होगा ।

मंदिरों द्वारा गांव में एकता आयेगी । घर के अंदर की मूर्तिपूजा पारिवारिक एकता को बनाये रखेगी ।

ध्यान से सुनो – स्पष्ट शब्दों में कहता हूं । पुरुष होकर तुम जिन देवताओं की आराधना करते हो, उनमें कुछ देवियां हैं । तुम्हारी मां, बहन, पत्नी व पुत्री आदि में जो देवी पराशक्ति की महिमा अब तक अप्रकट रही उसको वे देवियां ही प्रतिपादित करती हैं । देवी मां है । हमें अपनी बेटियों, पत्नी, बहनों और मां आदि को देवी के बराबर ज्योतिर्मय बनते देखना है ।

तुम, तुम्हारे पिता, भाई, बेटा तथा समस्त पुरुष वर्ग, जिस उन्नत अवस्था को प्राप्त करना चाहते हैं, उसके प्रतीक समस्त देवता हैं ।

तुम शिव हो; शक्ति तुम्हारी अर्द्धांगिनी है ।

तुम विष्णु हो; लक्ष्मी तुम्हारी देवी है ।

तुम ब्रह्मा हो; सरस्वती तुम्हारी सहधर्मिणी है । इस तत्व के द्वारा मनुष्य को पशुत्व से देवत्व की ओर ले जाने के लिए निर्मित देवपाठशालाएं ही मंदिर हैं ।

पुजारी लोग इस सत्य पर पर्दा डालते हैं । वह यही सोचता है, पूजा करने वाले शाश्वत रूप से दास, और गुलाम बने रहें । और खुद मैं दैवी शक्ति धारण करने वाला बना रहूं तो अच्छा होगा । जो दूसरों को अपने अधीन रखना चाहता है उसमें दैवी शक्ति नहीं रहती ।

चालाक की पोल आठ दिन में खुल जायेगी । कब तक एक ढोंगी अपने आप को छिपाकर दैवी शक्ति का अभिनय कर सकता है ? इसलिए इन पुजारियों का असली रूप खुल जाता है । लोग पुजारियों की उपेक्षा कर देते, मगर परंपरागत संप्रदाय का ख्याल करके पत्थर व देवों की पूजा मात्र करते हैं । लेकिन ऐसा पत्थर कभी वरदानमय नहीं बनेगा । एक मामूली पत्थर के टुकड़े को भी सच्चा साधु सच्ची भक्ति के साथ पूजे, भक्तिपूर्वक मंत्रों का उच्चारण करे तो जैसे भगवान का साक्षात्कार हो जाता है वैसे इन अयोग्य पुजारियों के स्पर्श मात्र से, भगवान उस शिला से निकल जायेंगे । वह तो फिर से रास्ते पर पड़े शिलाखंड के बराबर बन जायेगा ।

हम मंदिर जायें या न जायें, भगवान की आराधना करें या न करें, किंतु दूसरों को धोखा देना, प्रवंचित करना त्याग दें तो भगवान की कृपा के पात्र बनेंगे । तिल भर भी, एक छोटी सी बात पर भी दूसरों को धोखा न देकर, कोई परिपूर्ण सिद्धि प्राप्त करेगा, तो वही भगवान है । कीड़े, मकोड़े, कौवा, गौरैया, चिड़िया, चींटी तक को हानि नहीं पहुंचानी चाहिए । भगवान ने जन्म दिया है वह जो करे वही सही ..... ऐसी निर्लिप्त भावना लिये नदी में तैरते काष्ठ के बराबर इस संसार सागर में बहते जाना है । जो ऐसा अनासक्त होकर, भगवान पर सारा भार डाले निश्चल भाव से, जीवन पथ पर चलने लगता है उसको दैवी शक्ति प्राप्त होती है, इसमें कोई संदेह नहीं ।

दुर्बल जीव-जंतुओं पर जब तक मनुष्य अत्याचार करता रहेगा जब तक कलियुग रहेगा ।

अधर्म नहीं तो कलियुग नहीं । सारे संसार में कलि नहीं रहेगी । निकट भविष्य में इसकी संभावना नहीं कि संसार से अधर्म एवं अन्याय दूर होगा या कृतयुग का आगमन होगा । अकेला मैं ही क्योंकर न्याय के मार्ग पर चलूं ?...... यह सोचकर किसी को अपना अधर्म का मार्ग त्यागे बिना पूर्ववत उसी का अनुकरण करते नहीं रहना है । जो अन्याय को जिस क्षण त्यागता है, उसी क्षण कृतयुग उसे हाथों-हाथ मिल जाता है । इसमें कोई संदेह नहीं ।

अगर कोई एक व्यक्ति 'कलि' के विरुद्ध कमर कस लेगा तो, उसके देखा-देखी दस-पांच लोग 'कलि' को मटियामेट करने पर तुल जायेंगे । एक से दस, दस से सौ और इसी प्रकार हजार, लाख, करोड़ होते जायेंगे । इस प्रकार मानव जाति में 'सत्ययुग' का प्रसार प्रारंभ हो जायेगा । इसमें कोई संदेह नहीं ।

मूढ़ भक्ति

अब इस क्षण तक हमारी जनता में प्रचलित अंधी, मूढ़ भक्ति की कोई गिनती ही नहीं। इसके फलस्वरूप हमारे कार्य और व्यवहारों में जो विघ्न-बाधाएं उपस्थित हो रही हैं, उनका भी अंत नहीं ।

इस मूढ़ भक्ति में सबसे बड़ी मुसीबत की बात यह है कि हर कार्य के लिए, हम तिथि, नक्षत्र, लग्न, योग आदि देखने लगते हैं । हजामत करने के लिए भी हम लोगों को महीना, पक्ष, तिथि, नक्षत्र व दिन का योग-फल ढूंढ़ना होता है। हजामत बनवाने के लिए इतनी मुसीबतें उठानी हैं तो विवाह, व्यापार, यात्रा, शुभ कार्य इत्यादि बहुत से महत्वपूर्ण कार्यों के लिए, ऊपर कहे लग्न व शुभ योग निकालने में हम लोग जितना धन और समय बरबाद करते रहते हैं, उसकी सीमा ही नहीं । शकुन देखना भी हमारे नित्यप्रति व्यवहारों में भारी रोड़ा अटका देता है । इन बातों के कारण हमें कितना घाटा उठाना पड़ता है, धन का कैसा नुकसान होता है, इस पर हम लोग ध्यान देते ही नहीं । शकुन देखने से केवल हमारे कार्यों में बाधा पड़ती है । दिन, लग्न इत्यादि का योग टटोलते रहे तो हमारे कार्यों में ही विघ्न नहीं पड़ता, उलटे उक्त लगन आदि बताने वाले ज्योतिषी को पैसा भी देना पड़ता है ।

'समय धन से अधिक मूल्यवान है', ऐसी एक अंग्रेजी कहावत है। इस बात से हम लोग बिलकुल अनभिज्ञ हैं । समय को बेकार करें तो धन के लाभ से वंचित रह जायेंगे। आज का काम कल पर टालने से, भारी नुकसान उठाना पड़ेगा। जो भी काम हो, मन में आते ही कार्य के रूप में परिणत करें तो प्रायः उसमें सफलता मिलेगी । वैसा ही ढीला छोड़ दें और बाद में करने लगें तो प्रारंभ का उत्साह और वेग मंद पड़ जायेगा ।

अंग्रेजी पढ़े-लिखे लोगों से सुना है कि अशिक्षा ही मूढ़ भक्ति व अंधविश्वासों का कारण है । यदि लोगों में शिक्षा का प्रचार हो तो ये विश्वास अपने आप दूर हो जायेंगे। एक हद तक मैं इसे मानता हूं । लेकिन यह तो साफ मालूम होता है कि आजकल हमारे स्कूलों में जो अंग्रेजी शिक्षा दी जा रही है, वह इस मंतव्य को पूरा करने में काम न आयेगी। एक सौ साल से हमारे देश में अंग्रेजी की शिक्षा प्रचलित है । हजारों की संख्या में पाठशालाएं खुली हैं । इनमें लाखों, करोड़ों लोग शिक्षित होकर निकले हैं । ये लोग अंधविश्वासों से छुटकारा पा चुके हैं ? नहीं । हमारे देश की जनसंख्या तैंतीस करोड़ है । इन तैंतीस करोड़ लोगों के पूरी तरह शिक्षित होने पर ही अंधविश्वास व मूढ़ भक्ति के जाल से छूटना संभव

है, ऐसी बात तो नहीं । अब तक जिन्होंने उच्च शिक्षा प्राप्त की है, यदि वे लोग अपनी अंतरात्मा के प्रति सच्चे बने रहते तो अधिकांश लोगों का आचरण सुधर जाता । कितनी ही बातों में, हम अपने लोगों को, अंग्रेजी शिक्षा-प्राप्त व्यक्तियों के रहन-सहन का अनुकरण करते, अपने पुरातन रीति-रिवाजों को बदलते देख रहे हैं । इस मामले में भी यही हुआ होगा ।

अंग्रेजी स्कूलों से शिक्षा प्राप्त करने वाले लोगों में अपनी अंतरात्मा की वाणी पर चलने तथा अपनी बुद्धि एवं ज्ञान के विकास के अनुरूप उदारतापूर्ण व्यवहार करने की योग्यता नहीं है । अंग्रेजी स्कूलों में कितने ही झूठे-सच्चे शास्त्र पढ़ाये जाते हैं ।

लेकिन स्वतंत्रता, नेकी, साहस, सचाई, वीरता, पौरुष आदि को यत्नपूर्वक नहीं पढ़ाते । जिस सचाई का हम अनुभव करते हैं, उसी का आचरण भी करना चाहिए; ऐसा न करना अपमानजनक कृत्य और बड़ा पाप है, इतनी सी शिक्षा भी नहीं दी जाती । केवल मौखिक रूप से पढ़ा देते हैं । क्रियात्मक रूप में प्रशिक्षण नहीं दिया करते । पुस्तकीय ज्ञान, लौकिक व्यवहार और कथनी व करनी के बीच में दूरी रखने वालों का उदाहरण देना हो तो हमारे देश के अंग्रेजी स्कूलों के शिक्षित लोगों से बढ़कर और कोई अच्छा उदाहरण मिलना दुर्लभ है ।

निरुवळ्ळुवर ने कहा है – कर्नविनुम इन्नादु मन्नो विनैवेरु
सोल वेरुउडैयार तोडर्बु ।
(कहना कुछ करना अलग, जिनकी है यह बान
उनकी मैत्री खायेगी, सपने में भी जान ।)

इसका अर्थ स्पष्ट है कि जिनकी कथनी कुछ है और करनी कुछ और है उनका साहचर्य सपने में भी बुरा है ।

बी. ए., एम.ए. की डिग्रियां प्राप्त करके, वकील, प्रोफेसर, इंजीनियर या अफसर बने किसी अय्यर, अय्यंगार या पिल्लै को अपने बेटी-बेटे के विवाह के लिए शुभ लग्न निकालने की आवश्यकता नहीं है, क्या किसी ने ऐसा कहा है ? 'क्या करें, घर की औरतों के उपद्रवों से तंग आकर हमें ऐसे मूढ़तापूर्ण रिवाजों का पालन करना पड़ता है' । कुछ लोग इस प्रकार की शिकायत करते हैं । स्त्रियों की जिस बात को आदर देना है, वह तो अवश्य देना है । लेकिन बुद्धिमान व्यक्ति जिस बात पर हमारी हंसी उड़ाते हैं वैसे मूर्खतापूर्ण कृत्यों को करने के लिए स्त्रियां हमें मजबूर करें तो उनकी बात मानना बिलकुल गलत है । इसके अतिरिक्त ये असली कारण भी नहीं, केवल झूठा बहाना है । हम लोगों में ऐसी अंधी परंपरा को त्यागने का साहस न रखने का असली कारण यह है कि सनातन लोग और पामर जन हमको सहभोज के लिए निमंत्रित न करेंगे, बहिष्कार कर देंगे । अंग्रेजी शिक्षा-प्राप्त कुलीन हिंदू लोग असंख्य अंधविश्वास, अर्थहीन रूढ़ियों की हाथ, पैर की हथकड़ि – बेड़ियां सी डाले छटपटाते रहते हैं । इसका मुख्य कारण जाति बहिष्कार का डर ही है, और कुछ नहीं । इस असली कारण को छिपाकर स्त्रियों पर झूठा आरोप लगाने वाले ये ही जवांमर्द न जाने और कितनी ही

बातों में अपनी स्त्रियों से खरीदी हुई लौंडी या पशुतुल्य व्यवहार करते हैं । यह बात हमसे छिपी नहीं । अपरिमित धन और समय की बरबादी व पराभव, जगहंसाई, सत्य रूपी ईश्वर का विरोध, आपकी दृष्टि में महत्व नहीं रखता। इसके विपरीत सहभोज की स्वतंत्रता, समता का बहिष्कार महत्वपूर्ण बन गया है । आप लोग साहस के साथ जिसे सत्य मानते हैं, उस पर चलिये । थोड़े समय तक आप इनसे वंचित रहेंगे, मगर बाद में आपका पक्ष लेनेवालों की संख्या बढ़ेगी । सचाई के बल आदि कई एक कारणों से वह सहभोज भी आपको सहज ही सिद्ध हो जायेगा । साहस के साथ काम कीजियेगा ।

वाचकों का ज्ञान

आज का मनुष्य व्यापार, कला-कौशल, राजनैतिक, सामाजिक सुधार आदि लौकिक व्यवहारों के क्षेत्रों में लगभग समस्त योजनाओं पर विचार कर चुका है । किसी अमुक क्षेत्र तथा इलाके संबंधी सूक्ष्म ज्ञान से किसी अन्य क्षेत्र का शिक्षित व्यक्ति अपरिचित रह सकता है। मगर जो, जिस क्षेत्र विशेष का प्रशिक्षण भली भांति प्राप्त कर चुका है वह अपने कार्य-क्षेत्र की सूक्ष्मताओं की अच्छी जानकारी अवश्य रखेगा ।

जहां तक बुद्धि एवं ज्ञान का संबंध है, सामान्य रूप से मनुष्य अति सूक्ष्म सत्यों का अन्वेषण कर चुका है । मगर ज्ञान तथा जिन सत्यों का बोध हुआ है, उनका अभ्यास करने में मन असमर्थ है । ज्ञान का परिष्कार होने पर भी, चित्त शुद्धि होने का चारा नहीं मिला है। इसलिए ज्ञान द्वारा प्राप्त सचाइयों को आचरण में लाना मनुष्य के लिए बड़ा कठिन हो गया है । आत्मज्ञान के संबंध में, संत तायुमानर ने कहा है –

"वाचक ज्ञान से वरुमों, सुखम् पाळत्त
पूसलेंद्र पोमो पुकलाय् परापरमे।"

इसका अर्थ है – कोरे मौखिक रूप से प्राप्त ज्ञान से, आनंद का अनुभव कहां मिलता है ? क्या करें ? पापी मन तो अनवरत् संघर्ष करता रहता है ? – यह संघर्ष कब शांत होगा ? हे भगवान, इसे बताना !

इसी सचाई को सांसारिक नीति के संदर्भ में अभिव्यक्त करते हुए तिरुक्कळवर कहते हैं –

"सोल्लदल यावरुक्कुम एळिय अरियावम्
सोल्लिय वण्णम् सेयल।"

इस कुरळ (पद) का अर्थ है – किसी भी धर्म के बारे में मौखिक रूप से बताना सब के लिए आसान रहता है । मगर जो कुछ कहते हैं, वैसा करना दुस्साध्य हो जाता है ।

उदाहरण के लिए – नारी और नर में, आत्म प्रवृत्ति, गुण आदि समान होते हैं, तो फिर नारी को किसी भी दृष्टि से हेय मानना अनुचित है, यह विचार तो सिद्धांत रूप में यूरोप के शिक्षित वर्ग द्वारा माना गया है, मगर स्त्रियों के मताधिकर मांगने पर यूरोप के अधिकांश राजनीतिज्ञ और पंडित लोग इसका विरोध करने से चूकते नहीं, बल्कि कई बनावटी तर्कों का सबूत देने का साहस भी करते हैं ।

'विष्णु-भक्त चाहे किसी भी कुल का हो, समदृष्टि से, समान आदर पाने योग्य है', श्री रामानुज के इस सिद्धांत से सुपरिचित आज के वैष्णव संप्रदाय के लोग अन्य जाति वालों से ज्यादा ब्राह्मण और शूद्र का भेद दर्शाते रहते हैं । यही नहीं, आपस में भी वडकैले, तेनकैले (वैष्णव जाति का उपभेद) का नाम लेकर माथा-पच्ची करके झगड़े-फसाद में उलझे रहते हैं ।

'समस्त शरीर में मैं ही जीवात्मा बना रहता हूं' — ऐसा गीता में भगवान ने कहा है। एक और स्थान पर भगवान कहते हैं — 'जो संपूर्ण जीवों में अपने को, और अपनी आत्मा में समस्त जीवों को देखता है, वही दर्शक है ।' ये तथ्य वेदोपनिषदों के अंतिम निष्कर्ष हैं, यह जानकर भी हिंदू जाति, दुनिया की अन्य जातिवालों से ज्यादा जाति-भेद के मामलों में कट्टरता प्रदर्शित करती आ रही है ।

"इनसोल इविंतींक्द्रल काणबान एवन कोलो, वनसोल वळगुंवदु"

इस कुरळ (पद) के अनुसार, मधुर, मीठे शब्दों के प्रयोग से भलाई होते देखकर भी मनुष्य का परस्पर कटु वचनों का प्रयोग करते रहना, महामूर्खता है। यह तो अनुभवशील व्यक्तियों को ज्ञान है । फिर भी संसार में, कठोर शब्द और क्रोधपूर्ण विचारों से रहित व्यक्ति ढूंढ़ने पर भी मिलना दुर्लभ है ।

मृत्यु पाप का कुली है — बाईबल की इस सूक्ति को सारे ईसाई जानते हैं । तिस पर भी पापकृत्य से बिलकुल मुक्त ईसाई कहीं नहीं मिलते । उल्टे 'हम सब पापी हैं' का राग अलापते दिन काटते हैं ।

ओह ! यह कैसा अंधेर है ? अन्याय है ! अत्याचार है !

मामूली तौर पर, व्यापार, कृषि इत्यादि कार्यों में भी स्थापित राह पर चलने से लाभ निकलेगा, इसका निश्चय रहने पर भी उस मार्ग का अनुकरण करने में असमर्थ होकर अकुला रहे हैं । इस महान दुर्बलता का निराकरण खोजे बिना हमारा चुप रहना न्यायसंगत न होगा।

जानबूझकर, आंखें खोलकर गड्ढे में गिरने के समान, मानव जाति अपनी भलाई की बात से अच्छी तरह अवगत रहने पर भी बुराइयों से अपने आप को छुड़ाने में असमर्थ होकर छटपटा रही है ।

इसका क्या निवारण है ? मानसिक दृढ़ता ही इसकी औषधि है। तात्कालिक कठिनाइयों, कष्टों की परवाह न करके मनुष्य जिसे सत्य मान चुका है, उस पर चलकर दिखायें । ऐसे सत्यव्रत का पालने करने वालों को धैर्य के साथ सत्पथ पर चलने वालों को उत्साहित करना है । भेंट, पुरस्कार और प्रशंसात्मक शब्दों से उनको प्रेरणा देते रहना है । ओह ! कलियुग से दिल भर गया । बस, अनावश्यक दुख, मुसीबत व झंझटों से संसार तंग आ गया है ।

आओ भाइयो ! देश के निवासियो !

एकाध व्यक्ति नेकी की राह पकड़ने की कोशिश करे तो कई प्रकार की बाधाएं रोज अटकती हैं जिससे नेक मार्ग पर अग्रसर होने के लिए उत्सुक लोगों का साहस टूट जाता

है । आओ भाइयो ! हम दल के दल झुंड के रूप में नेकी का मार्ग अपनायें ।

स्त्री, पुरुष का समत्व ही धर्म है । यह समझ गये तुम ? तब तो आओ, लाखों की संख्या में नारियों को बंधनमुक्त करें । जान लिया कि जाति-भेदों में कोई सार नहीं ? रंगभेद, देशभेद कोई महत्त्व नहीं, यह जान लिया तुमने ? अच्छा, करोड़ों की संख्या में आगे बढ़कर आइये ! समत्व मार्ग पर आगे बढ़ें; दकियानूसी, अर्थहीन मूढ़ संप्रदायों के बंधन को हम लाखों लोग एकत्रित होकर तोड़ कर चूर-चूर कर दें ।

'प्रेम ही सुख प्रदान करेगा; विरोध का अंत करेगा', यह जान गये तुम ? अच्छा ! उठो ! हम करोड़ों लोग हर कहीं, हर समय, हर प्राणी से अनवरत्, अविचलित, अटूट प्रेम दिखाना प्रारंभ करें । कलियुग का अंत करें हम । साहस को संस्थापित करें हम ।

अमृत की खोज

"काक्क निरुट् काट्चीयल्लालोरु पोक्कुमिल्लै ।"

— तायुमानवर

अनेक वर्ष पूर्व की बात है । एक भिखारी गली में गाता जा रहा था —

"दूगुंकैपिले वांगुकिर मूच्छू-अट्
सुषि मारि पोनातुल पोच्छु ।"

(जीवन का क्या निश्चय ? सोते वक्त चलती सांस उखड़ जाये तो बस ।)

यह गाना सुनते ही मैं गहरे चिंतन में डूब गया । सोचा ! हाय ! हमारा शरीर इतना क्षणभंगुर है, तो इस संसार में कौन इसे बड़ा करके दिखाने वाला है ? ईश्वर हमारी बुद्धि को उद्भासित करता है । हमें बुद्धि का मूर्तिमान रूप दिया है । बुद्धि आनंद का सुख चाहती है । अपार सौंदर्य, और असीम सुखों से भरा एक संसार हमारे सम्मुख है । यह संसार चिर आनंददायक है । चिंताहीन है । इस ब्रह्मांड में अणु के बराबर या उससे भी छोटे एक भूमंडल में हम विचरण कर पाते हैं । भूमि की तरह असंख्य ग्रहमंडल अंतरिक्ष में घूमते रहते हैं । उनकी प्रकृति को भी हम अपने ज्ञान द्वारा माप लेते हैं। इसके एक अंश को बड़ी दूरी से देखते हैं । इतने पर भी जहां तक हमारी दृष्टि जाये सौंदर्य ही सौंदर्य है । हमारे भूमंडल पर आकाश एक वितान सा छाया हुआ है । आकाश और भूमि के अंतराल में निर्मल आकाश, सूर्य की रश्मियों की सतरंगी आभा, रंगों का इंद्रजाल, वन, पर्वत, नदी, नाले, समुद्र .... सौंदर्य ही सौंदर्य । और कुछ नहीं ।

हर चीज में, हर अनुभव में सुख व दुख दोनों हैं । हम बुद्धि के बल पर दुखानुभूति को परे हटाकर सुख को प्राप्त कर सकते हैं । जल स्नान करें तो सुख, पान करें तो सुख। आग — सर्दी में ताप लें तो सुख, केवल देखते रहें तो भी सुख । मिट्टी — इसमें जो कुछ उगायें उगता है, अधिकांश सुखदायक है, इस पर निवास करने में सुख । हवा — इसका स्पर्श सुखद, सांस में भर लें तो सुख । जीव-जंतुओं से साहचर्य बढ़ा लें तो सुख । मानवीय नाते-रिश्ते में यदि प्यार रहे तो अतीव सुख । और तो और, इस संसार में खाना, पीना, सोना, मेहनत करना, नाचना, गाना, श्रवण करना, चिंतन करना, ज्ञान-प्राप्ति हर बात में सुख ही सुख भरा रहता है ।

दुख का शीघ्र निवारण साध्य न हुआ । लेकिन ये समस्त सुख दुखों में घुले-मिले हैं।

प्रत्येक जीवन अपनी बुद्धि के बल पर दुख को दूर करके सुख मात्र को भोगने के लिए विह्वल है । दुखों का मूलोच्छेद करने के लिए प्रतिभाशील बुद्धि, अदम्य साहस एवं दृढ़ता अपेक्षित है । यह तो उतनी सरल बात नहीं लगती । बहुत सी मुसीबतों से गुजरने पर ही छोटी-मोटी सचाइयां समझ में आने लगती हैं । प्रत्येक मनुष्य अपने लिए सुख का महल खड़ा करने के लिए लालायित है। असाधारण प्रतिभा चाहिए । अविचलित मानसिक दृढ़ता, कला-कौशल में दक्षता, कीर्ति, धन-दौलत – सब की अपेक्षा है हमें । घर-बार, भाई-बहन, गांव वाले, देश के लोग, विश्व भर के लोग सुखी एवं संपन्न रहें, ऐसा प्रबंध हमें करना है । हमारी बडी-बड़ी महत्वाकांक्षाएं हैं । यदि ये इच्छाएं पूरी होनी हैं, तो दृढ़ नींव पर धीरे-धीरे ऊपर उठते आना है । शाश्वत सुखों को शीघ्र निकालना साध्य नहीं । कोई अकिंचन, धनी होना चाहता हो, इसमें कई साल लगेंगे । अशिक्षित को शिक्षित होने में कई साल तक श्रम करना होगा । किसी काम-धंधे में दक्षता प्राप्त करनी हो तो भी काफी समय लगेगा । आत्म-ज्ञान की प्राप्ति के लिए भी समय लगता है । जो धीरज रखता है वही सफल होता है। अधीर बने तो काम बिगड़ जायेगा । अच्छा । इसी बीच में मृत्यु आड़े आ जाती है। इस तरह सुखों की खोज में, अथक प्रयत्न करने, इन सबका सामना करते हुए हमें उक्त समय की प्रतीक्षा में धीरज रखना होता है । उस भिखारी ने जो गाया अगर कुछ वैसा घटित हो जाये तो क्या करें ? नींद में सांस उखड़ जाये तो क्या करना चाहिए ? ओह ! कैसी झंझट की बात है यह । सौ साल जियेंगे, इसका निश्चय हो तो ठीक है । सौ साल के अंदर बहुत कुछ कर गुजरेंगे। लेकिन अगले क्षण का निश्चय नहीं है तो क्या करें ? ओह ! यह नहीं चलेगा । किसी न किसी तरह शरीर को स्वस्थ और मजबूत रखना है । जो कुछ हमें करना है, उसको पूरा करके ही हम मरेंगे, जब तक जीवित रहेंगे । हमारी इच्छाएं और धर्म पूरा होने तक हम मृत्युंजयी हैं ।

पुनर्जन्म

पुनर्जन्म होता है

मान लीजिये कल शाम मदुरै में एक शास्त्री जी की मृत्यु हो गयी है। उनका पुनर्जन्म संभव है क्या ? सड़क पर चलते वक्त किसी के पैर के नीचे आकर एक चींटी कुचली गयी । फिर से वह चींटी जन्म लेगी ? इन बातों के लिए शास्त्रों ने विस्तार से बताया है । उन्हें पढ़कर ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं । मगर अब मैं जो कुछ कहने वाला हूं, वह कुछ और बात है। मैं तो हिंदुस्तान के पुनर्जन्म पर कुछ कहना चाहता हूं ।

हिंदुस्तान माने हिंदुओं का स्थान अर्थात् भूमि । यही हमारे देश तथा देश की जनता का नाम है । यहां की जनता को 'भारत जाति' भी कहा करते हैं ।

भारत जाति

भारत, भरत द्वारा संस्थापित हुआ है । यह भरत, राजा दुष्यंत का पुत्र था । हिमालय से लेकर कुमारी अंतरीप तक फैले इस देश को भरत ने एक छत्र के नीचे लाकर, इस पर पहले पहल एकाधिपत्य चलाया था इसीलिए इस देश का नाम 'भारतवर्ष' पड़ा । गंगा में जो भी नदी-नाले आ मिलते हैं, गंगाजल बन जाते हैं । वैसे जो भी भारत में आकर रह गये और कई पीढ़ियों से यहां रहते आ रहे हैं वे हमारे देश के हो जाते हैं ।

ईसाई हों या मुसलमान हों, चाहे कहीं से भी आये और यहां आकर अपने इष्ट देवता और धर्म का पालन करने वाले हों । जिन्होंने इस भारत भूमि में जन्म लिया, पले-बढ़े और इसी की शरण ली उन सबकी गिनती भारत जाति के अंतर्गत् करनी चाहिए । भारतवासियों की जाति एक है । वह अखंड है, अनादि है । अमर है । इसका आधार एवं मूल शक्ति आर्य संपत्ति है । अर्थात् आर्यो की बुद्धि एवं ज्ञान तथा उस ज्ञान से प्राप्त फल।

आर्य संपत्ति

'संपत्ति' संस्कृत शब्द है । इसका अर्थ है धन । लेकिन यहां धन माने द्रव्य, भूमि, गाय, बैल ही नहीं, यह ज्ञान, चरित्र, धन तीनों का सूचक है । आर्य संपत्ति माने आर्यो की बुद्धि एवं ज्ञान का विकास ।

हमारे वेद, शास्त्र, जनता, भाषाएं, कविता, शिल्प, संगीत, नृत्य, उद्योग धंधे, हमारे मंदिरों के उन्नत गोपुर, मंडप तथा झोपड़ियां सबको सामान्य रूप से 'आर्य संपत्ति' का

नाम दिया गया है । संस्कृत के कवि कालिदास रचित शाकुंतल नाटक, हिंदी में तुलसीदास की रामचरित मानस, कंबरामायण, शिल्पदिकारम्, तिरुकुरळ, आंडाळ, तिरुमोळि — ये सब आर्य संपत्ति हैं । तंजाऊर का मंदिर, तिरुमैलै नायक्कर का महल, त्यागराज के कीर्तन, एलोरा के गुफा मंदिर, आगरा का ताजमहल, शरभ शास्त्री का वेणुगान — ये सब आर्य संपत्ति हैं, अर्थात् आर्य संपत्ति माने हिंदुस्तान के ज्ञान का विकास, हिंदुस्तान की सभ्यता। जब तक यह सुरक्षित है, जब तक यह जाति जीवंत रहेगी । इसमें मोरचा लगने दें तो बस इस जाति में घुन लग जायेगा ।

जब तक यह संसार रहेगा, इस आर्य संपत्ति का संरक्षण करना तथा इसे और उज्ज्वल और यशस्वी बनाना, देवताओं द्वारा भारत जाति के लिए नियत व प्रेक्षित धर्म है ।

मध्यकाल में हमारा पराभव

सैकड़ों वर्षों से हम इस आर्य संपत्ति का पालन करते आ रहे थे । लेकिन गत कई सौ साल तक हमने इसमें जंग न लगने दिया । देवताओं द्वारा प्रेक्षित धर्म का आलस्य, अहंभाव, उपेक्षा और हीन भावना के कारण उल्लंघन करने लगे । देवताओं ने आशीर्वाद दिया, 'इस भारत जाति को थोड़ा घुन लग जाये ।'

आपने अजगर के बारे में सुना है ? सुनते हैं उसकी पूंछ पर आग जलती रहे तब भी वह सुख की नींद का मजा लेता रहता है । हमारी संस्कृति एवं सभ्यता पर घुन लग गया है, लेकिन इसका बोध हमें नहीं रहा । हां, ऐसा गर्व, इतना अहंभाव, इतनी लापरवाही और आलस्य !

हमारे काव्य में आनंद की मात्रा कम होने लगी । इसका अभाव रहा । ऊबड़-खाबड़ झाड़-झंखाड़ों से भरा मार्ग हमारे कवियों को सुगम लगने लगा । कवि महोदय 'आंख' को 'चक्षु' कहने लगे । रस फीका पड़ने लगा । सार एवं तत्व के बदले खोखलापन बढ़ता गया । सचाई कम हुई । उक्ति वैचित्र्य, वक्रोक्ति के चमत्कार का प्रदर्शन अधिक होने लगा। कवि कंबन ने गाया है :

"छपियुरत्तेळिंदु तणेंद्रळुक्कमुम तळुविच् चांद्रोर,
कवियेनक् किडंद गोदावच्चिनै वीरर् कंडनर।"

(कंबरामायण)

छवि मायने प्रकाश । यह संस्कृत शब्द है । शायद कंबन के जमाने में यह शब्द ज्यादा प्रचलित था ।

'स्वच्छ शीतल गुणवाली यह नदी उत्तम कवि की कविता सी प्रवाहित थी', कंबन इस प्रकार गोदावरी का वर्णन करता है । कंबन के विचार से कविता प्रकाशमयी, स्पष्ट, शीतल धारा सी माधुर्यपूर्ण होनी चाहिए ।

प्राचीन काल के ग्रंथ तत्कालीन प्रचलित भाषा में रचे गये हैं । समय के साथ-साथ भाषा परिवर्तित होती रहती है । पुराने शब्द बदलते हैं और उनके स्थान पर नये शब्द

आ जाते हैं । विद्वान एवं कवियों को अपने समय के सामान्य जन की समझ में आनेवाले शब्दों का प्रयोग करना चाहिए । अद्भुत मार्मिक प्रसंगों को सरल मधुर शैली में प्रस्तुत, करें तो वही अच्छी कविता है । लेकिन कुछ शताब्दियों से साधु-संत और कवियों ने साधारण बात को भी असाधारण और अलौकिक बनाकर, गूढ़, अस्पष्ट शैली में प्रस्तुत करना ही पांडित्य एवं प्रतिभा का लक्षण मान लिया है ।

मध्यकालीन संगीत

विश्व भर के विभिन्न देशों के संगीत में भारतीय संगीत अपना विशिष्ट स्थान रखता है। कविता की तरह संगीत में भी नवरसों का समावेश होता है। नवरसों के संबंध में एक अलग लेख बाद में लिखा जायेगा । प्राचीन ग्रंथों में कौन-कौन से राग, किस संदर्भ में किन रसों को उद्दीप्त करने के लिए गाये जायें, इसका विधि-विधान है । कीर्तन के पदों का अर्थ, रागों की तरलता और रस के माधुर्य में घुल-मिल जाना है । संगीतकार भक्त त्यागराज के जमाने में हमारे यहां का संगीत उज्ज्वल था, बाद में तो उसमें अंधकार छाने लगा । गीतों में रसों का सामंजस्य नहीं हो पाता। यदि होता तब भी शोक रस (करुण रस) को ही लेते हैं, अन्य रसों की कोई पूछ नहीं । गीतों के स्वरों के अनुसार ताल बिठाना है । यह क्रम तो बदल गया। अब ताल के अनुसार गीत बनता है । 'माधुर्य से ज्यादा ताल बिठाना ही मुख्य है', यह निष्कर्ष हो गया । सुखानुभूति और ताल दोनों का मधुर सम्मिश्रण रहना चाहिए । बिना इसके केवल 'ताल' मात्र हो वह संगीत नहीं हो सकता।

पुनर्जन्म

मध्यकाल में हमारा जो पतन हो गया था, उसके लिए संगीत और कविता का उदाहरण प्रस्तुत किया । मगर यह स्थिति केवल उन दोनों की ही नहीं रही । हमारी शिल्पकला, चित्रकला, नीतिशास्त्र, हाथ; पैर, और कितना कहूं .... हर क्षेत्र में यह अवनति व्याप्त हो गयी थी । रोग घातक हो गया था। ऐन मौके पर पराशक्ति ने कई एक महान धनवंत्रियों को हमारे पास भेजने की कृपा की । हां, अच्छा हुआ कि पराशक्ति की कृपा हम पर रही। हम बाल-बाल बच गये । यह हमारा पुनर्जन्म है। पुनर्जन्म के समस्त लक्षणों को हम पा रहे हैं । भारतवासियों ने नया जन्म ले लिया । आज दुनिया यह मानती है कि विश्वकवियों में से हमारे रवींद्रनाथ ठाकुर एक हैं । आज तक यूरोपीय पंडितों ने प्रकृति विज्ञान को अपनी बपौती समझ रखा था, मगर अब यूरोपीय विद्वानों में कोई ऐसा नहीं जो इसे स्वीकार नहीं करता कि हमारे जगदीश चंद्र बसु प्रकृति विज्ञान में अद्वितीय प्रतिभा रखते हैं। निकट भविष्य में वह दिन आयेगा कि तमिलनाडु में नयी कविता एवं विज्ञान शास्त्र की प्रतिभा चमक उठेगी और दुनिया यह देखकर विस्मय-विमुग्ध हो जायेगी ।

मृत्यु से बाल-बाल बच गये हम । हीरे के जैसे कठोर व दृढ़ होकर बच गये । देवताओं की कृपा है । हमारा यह पुनर्जन्म बड़ा सुंदर व सफल रहे । इसके लिए हम अनवरत उनसे

प्रार्थना करते रहें ।

हमारे देशवालों का यह विश्वास है कि प्रत्येक मनुष्य को अपने कर्मफलानुसार, पाप-पुण्य के बल पर, अगले जन्म में, उच्च या नीच जन्म मिलेगा । पाप कृत्य करने वाले से कहें – 'तुम अगले जन्म में पशु बनोगे' तो वह घबरा जाता है । मगर मनुष्य इस बात पर ध्यान नहीं देते कि वे इस जन्म में ही पशुतुल्य रहतें हैं । हर पल मनुष्य के मन में जो विचार आता है, और जो कार्य वह करता है, वही उसके कई जन्म पाने का कारण बनते हैं । इस संसार में जिसने जन्म लिया है, वह उस एक जन्म में ही हजारों बार जन्म ले-लेकर मरता है । यह कहना ठीक होगा कि हर क्षण हर कोई जन्म ले-लेकर मरता है, मगर मर कर जीता है । क्या हमने पशुतुल्य मनुष्यों को नहीं देखा है ? जरा हम आत्मलीन होकर, अपने आप पर विचार करें, तो साफ मालूम हो जायेगा कि हम कब कौन सा पशु बने थे ? छल, कपट, प्रवंचना, संदर्भ के अनुसार लुकाव-छिपाव बरतने वाला, सियार नहीं तो और क्या है ? बिलकुल निरुत्साहित, और कामचोर बने, सिर लटकाये, मन मारे जो बैठा रहता है वह 'देवांगु' (बंदर की जात का दुबला-पतला जानवर) है न ?

लुक-छिपकर दूसरों को हानि पहुंचाने वाला सर्प है । आलसी, यशाभिलाषारहित, अल्प सुखों में मग्न रहने वाला सुअर है । अपनी स्वतंत्रता का ख्याल न करके, दूसरों की इच्छा पर चलते, उनका दिया खाते, पेट पालने वाला कुत्ता है । प्रत्येक छोटी-मोटी बातों पर जिसका पारा चढ़ जाता है वह तो शिकारी कुत्ता है । कांग्रेस में रहते हुए, अंग्रेज अफसरों का भी हितैषी बने रहने की कामना रखने वाला 'मेहता' के दल वाला चिमगादड़ है । अपनी बुद्धि के बल पर विषय-ज्ञान को प्राप्त न करके, पूर्वजों के शास्त्र को रटते रहनेवाला तोता है। दूसरों की अवहेलना, व अपमान का पात्र बनने पर भी, उसका प्रतिरोध न करके, अपनी मंदमति के कारण सहिष्णु बने रहने वाला गधा है, गधा । ठाठ-बाट का दम भरने वाला कलहंस । अशिक्षित की पशुओं में भी गिनती नहीं । वह निरा खंभा है । खुद परिश्रम न करके, दूसरों का धन लूटकर जीने वाला बाज है । एक नये सत्य के आविर्भूत होते ही, उसे उत्साह के साथ ग्रहण न करके घृणा करने वाला (प्रकाश से डरने वाला) उल्लू है ।

हर मिनिट, हर पल जो सत्य का भाषण करते, धर्म का आचरण करते, परमार्थ का अन्वेषक बना रहता है, वही मानव व देव कहने योग्य रहेगा । पशुतुल्य प्रवृत्तियों को हम सबको प्रत्येक क्षण भगाते रहने का प्रयास करते रहना चाहिए ।

सांसारिक जीवन की सार्थकता

मानव तथा मानवेतर जीवों द्वारा सांसारिक जीवन में प्रेक्षित फल कौन सा है ? "शाश्वत, अजस्र, अपरिवर्तित, अमर आनंद का उपभोग करना ही है ।"

इस आनंद की प्राप्ति के लिए ही, मनुष्य 'विद्या-अध्ययन करते हैं, धन संग्रह, तपस्या, शासन, चोरी, हत्या करते हैं, डाका डालते है, नाचते-गाते हैं, हंसते-रोते और हल चलाते कर्मरत रहते हैं । केवल मनुष्य ही नहीं, प्रत्येक जीव-जंतु का कृत्य इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए गतिमय है ।

लेकिन यह तो स्पष्ट है कि आज तक किसी जीव ने इस नित्यानंद की अवस्था की प्राप्ति नहीं की है । महात्मा बुद्ध ने जिन चार सत्यों का संधान किया था उनमें सबसे पहला सत्य यह है कि यह संसार दुखों से पूर्ण है । ऐसे अनिवार्य दुखों का मूल कारण प्रत्येक जीवधारी, अपने आपको अन्य जीवों को देखकर, या उनके बारे में सोचकर भय एवं शंका से पीड़ित होता है ।

प्रत्येक जीव का अपने या पराये के प्रति घृणा, जुगुप्सा, क्लेश, चिंता व असहिष्णुता आदि से पीड़ित होने का कारण अनादि काल से, जीवों के अंदर निरंतर चलते संघर्ष के अलावा और कुछ नहीं ।

'सारी सृष्टि, समस्त गुण एक हैं', वेदांत ज्ञान के इस दृष्टिकोण द्वारा अज्ञान को दूर करना चाहिए । इस ज्ञान का बोध हमारे लिए नया नहीं है । जब से सृष्टि का विकास हुआ तब से लेकर, कितने ही पंडित और कवियों के मन में इस ज्ञान का बोध हुआ है। न जाने कितने ही करोड़ों लोग इस सत्य को हृदयंगम किये बिना, केवल मौखिक प्रलाप करते आये हैं ।

इस ज्ञानानुभूति को व्यवहार में लाने से वही पुराना अज्ञान पंडित अथवा पामर को रोक देता है ।

"अज्ञान पर विजय प्राप्त कर लें, तो अमर आनंद की प्राप्ति होगी।" इस तथ्य को शास्त्र युक्ति और अनुभव, आदि प्रमाणों द्वारा हमें समझाते हैं । फिर भी अज्ञान रूपी भूत और काम, क्रोध, मोह, लोभ, मद, आश्चर्य जैसे छह यमदूतों को परास्त करने के लिए मानव का चित्त उतना सशक्त नहीं रहता । कुत्ते को नहला-धुलाकर, खिला-पिलाकर घर में रखने पर भी, वह दुम हिलाकर मैली और गंदी चीजें खाने के लिए भागता है न ? वैसे ही कितने

नये-नये आनंद और सुखों का बोध कराने पर भी मन, उनमें नहीं लगता, बार-बार जान-बूझकर किसी न किसी दुख के गड्ढे में गिरकर छटपटाने लगता है ।

मन के अधीर होने पर बुद्धि चंचल हो जाती है।इसलिए बुद्धि पर विश्वास करके, मन को चंचल होने नहीं देना । मन को स्थिर रखने का अभ्यास ही, समस्त योगों में उत्तम योग है । मन भूले-भटके दुख के गड्ढे में गिर जाता है तो बुद्धि केवल दर्शक बनी रहती है। जब कभी बुद्धि मना करती है तो मन उसकी परवाह नहीं करता । बुद्धि का उल्लंघन करने की शक्ति मन को है।

इसलिए जब मन अधीर हो दुख से विचलित होने लगे तब दृढ़ता एवं धैर्य की लगाम लगाकर, उसे रोके रखने का अभ्यास करना ही उत्तम योग-साधना है। इस सिद्धि को प्राप्त करने के लिए कुछ लोग सांसारिक जीवन को त्यागकर एकांत स्थान में जाकर, आंखें मूंदकर बैठ जाते हैं । कुछ और लोग श्वास बंधन, अष्ट बंधन जैसे हठयोग की साधना करने लगते हैं । कुछ लोग निर्जन स्थान पर जप-तप करते हैं ।

जो व्यक्ति सांसारिक जीवन से भागे बिना, लोगों से मिलते-जुलते रहकर नित्य कर्म, धर्म करता रहे और कभी चंचलता का शिकार बने बिना, मन को जीत लेता है, वही सच्चा साधक है । यही सच्ची साधना है । बाकी सब व्यर्थ है ।

नीति, शांति, समत्व, प्रेम के द्वारा मानसिक दृढ़ता एवं संयम प्राप्त होगा तथा चिर आनंद की प्राप्ति होगी । इसके अतिरिक्त जीवन को सार्थक बनाने का कोई मार्ग नहीं।

कथनी और करनी का अंतर

प्रत्येक व्यक्ति का अपना एक लक्ष्य होता है । अर्थात् किसी एक व्यक्ति को, अन्य व्यक्तियों की अपेक्षा किसी धर्म, न्याय, या जाति के प्रति विशेष रुचि हो सकती है । लेकिन जरूरी नहीं कि ये लोकमत के अनुसार लाभदायक हों । कोई एक सिद्धांत बुरा या अच्छा फल भी दे सकता है । लेकिन जब कोई व्यक्ति अपने सिद्धांत के अनुसार किसी कर्म में प्रवृत्त होता है तो यही विश्वास रखता है कि उक्त कर्म से अपने या पराये की भलाई होगी। अत्याचारपूर्ण शासन में भूखे-प्यासे रहकर सरकारी अधिकारियों के द्वारा अपमानित होकर, अपनी प्रतिष्ठा खोकर, असंख्य कष्ट झेलने पड़ते हैं । किसान को खेती करने में भी अनेक बाधाओं का सामना करना पड़ता है । समय पर वर्षा नहीं होती, यदि वर्षा हो भी जाये तो खेत की जुताई करने के लिए बैल नहीं, यदि जुताई हो जाये तो अच्छे बीज की कमी है । बीज मिलें तब ही तो खेती करके, उसकी निराई करे, फसल की निगरानी करे, कटे धान को घर लाये, और अनाज का संग्रह करके सुखी रहे। किंतु इसके लिए आवश्यक धन ही नहीं। यदि इतना कष्ट उठाकर फसल का धान घर ले आये, तो भी उसका फल भोगने की गुजाइंश ही नहीं । क्योंकि सरकार का लगान चुकाने के लिए उसे हाथों-हाथ बेच देना पड़ता है । इसलिए किसान, खेती करके गुजारा करने की अपेक्षा कोई भी धंधा करने के इरादे से, डाकुओं के दल में मिलकर डाका डालकर, लूट-पाट मचाकर, पेट पालने लगता है । यद्यपि इस कर्म के पीछे उसका अपना एक निजी लक्ष्य होता है, हो सकता है कि वह उसके लिए लाभदायक हो, किंतु औरों के लिए बड़ा हानिकर है । लेकिन वह तो 'आपत धर्म' का पालन करने वाला है । उसकी पत्नी और बाल-बच्चे, भूखे, नंगे हैं । न खाने को अन्न है, न पहनने को कपड़ा । एक पुरुष होकर अपने परिवार का भरण-पोषण करने में असमर्थ होने के कारण उसका गौरव छिन जाता है । यह तो साबित हो चुका कि खेती करने से कुछ मिलने की आशा नहीं । इसके विपरीत, चोरी करने से पेट में कुछ न कुछ पड़ने की आशा है। अंग्रेजों की कृपा से यात्रीगण निशस्त्र हैं । पुलिस के नाम पर देशी रखवाले हैं, उनका वेतन बहुत कम है, इसके अलावा उन्हें पूरा यकीन है कि उनकी सहायता के बिना विदेशी शासन टिक नहीं सकता, इसलिए वे बड़े इत्मीनान से चोरी करने को तैयार हैं। डाका डालने वाले लुटेरों के साथ लिखा-पढ़ी करके उनकी लूट में एक हिस्सा लेकर अपना गुजारा करने पर तुले हैं ये लोग । ऐसी हालत में, लूट-पाट

मचाकर पेट पालना, बेहतर है, एक किसान ऐसा मान लेता है । यह धंधा हिंसा पर निर्भर है । हिंसा तो पाप है । इस पाप कृत्य से मोक्ष का मार्ग बंद हो जायेगा, इसकी उसे शंका होती है। इससे बचने का, वह एक उपाय कर लेता है । डाका डालते वक्त, कुछ लोगों पर हाथ नहीं लगाता। स्त्री, रोगी, दूर की यात्रा करने वाले यात्री आदि की तथा इन जैसे कुछ और लोगों की हिंसा नहीं करता । इतने में ही वह तृप्त नहीं होता, अपने लूट के माल के एक हिस्से को दान, धर्म आदि में लगाता है । अपनी अंतरात्मा से वह प्रश्न करता है दिन-दहाड़े लूट मचाने वाले साहूकार, लेन-देन करने वाले हृदयहीन महाजन ऐसा करते हैं तो मैं क्यों न लूटूं ? उठें-बैठें, चलें, दौड़ें, तो कर लगाने वाली सरकार, जमीन का कर, पानी का कर, सड़क का कर, आय कर, खर्च का कर, धंधे पर कर, मकान पर कर, चुंगी कर, बिक्री पर कर, रेल कर, शराब पर कर, कुत्ते पर कर, आयात कर, निर्यात कर, और कितने ही असंख्य कर लगाकर सरकार, हमारे घर-बार, जमीन-जायदाद, गाय-बैल बरतन-भांडे सब को नीलाम कर डालती है, उस सरकार को हम क्यों न लूटें ? इस प्रकार के प्रश्न उसके मन में उठते रहते हैं । आखिर तर्क-वितर्क के उपरांत ऐसा निश्चय कर लेता है कि लूट-पाट मचाकर पेट भरना ही श्रेयस्कर है । यह निश्चय उसके जन्मजात गुण व प्रकृति के विरुद्ध हो, धर्म शास्त्र के लिए बिलकुल मान्य न हो, फिर भी जीवन की मांग और आवश्यकता हो जाने से आपत धर्म के रूप में उसके चित्त में जम जाता है । इसी को एक सिद्धांत मानकर वह अपने कर्म में प्रवृत्त होता है । कुछ लोग इस पर साधुवाद देंगे । चाहे जो कुछ भी कहें, या करें वह जिसे अपना स्वधर्म मान चुका है उसी पर अपना गुजारा करता जाता है । उसकी कथनी और करनी में साम्य है । दोनों एक-दूसरे के अनुगामी हैं । इस दृष्टि से देखा जाये तो उसे दृढ़ चित्त वाला पुरुष कह सकते हैं ।

सिद्धांत के मायने क्या हैं ? विवेचन द्वारा इसके तत्वार्थ को समझना चाहिए। क्योंकि हमारे बीच में कुछ ऐसे लोग भी है जो बिना निश्चित मत एवं विचार के कार्य करते रहते हैं । जिसमें विवेचनात्मक बुद्धि और शक्ति नहीं, उसका कोई सिद्धांत नहीं होता। जो सिद्धांती है, उसमें विवेचनात्मक बुद्धि अनिवार्य है । मान लीजिए कि एक गांव है और उसके निवासी एक ही जाति या वर्ग के हैं । सब के सब कळ जाति (चोरी करने वाली जाति) के हैं, पीढ़ी-दर-पीढ़ी डाका डालना ही उनका धंधा है, आजीविका है। उनमें एक को ले लें । उसका पिता डाकू है, दादा, परदादा, पड़ोसी, मामा, साला, हर एक डाकू है, इसलिए वह भी डाकू है । अर्थात् वह परंपरागत चोर है। ऐसे व्यक्ति को लेकर, यह नहीं कहना चाहिए कि वह अपने सिद्धांत पर कर्म करता है । उसमें विवेचनात्मक बुद्धि नहीं हो सकती । यह भी संभव है कि उसमें वह शक्ति नहीं हो लेकिन वह तो अपनी बुद्धि के बल पर, एक सिद्धांत को मानकर, उसे अपने कर्म द्वारा प्रतिच्छायित करने वाला नहीं है। कितने ही चलते-फिरते मुरदे मानव जन्म पाने का उद्देश्य जाने बिना, खाते-पीते हैं और एक दिन मर जाते हैं । ये लोग, अच्छे या बुरे किसी एक सिद्धांत का पालन करके,

उस पर दृढ़ रहते हुए अपने-अपने नियत कर्म करते रहने वाले नहीं हैं । तब सिद्धांत के मायने क्या हैं ?

किसी कर्म के औचित्य और अनौचित्य को अपनी विवेचनात्मक बुद्धि और गहरे चिंतन एवं मनन के द्वारा पहचानना और जीवन का आधार बनाना ही सिद्धांत है । हमारे देश में कई लोग ऐसे सिद्धांतों को स्वीकार करने में समर्थ हैं । लेकिन किसी सिद्धांत को, कोरे सिद्धांत के रूप में स्वीकार करना एक बात है, उसे अपने आचरण में उतार लेना कुछ और बात है । यदि कोई किसी एक सिद्धांत को अपनाकर, उस पर चलने में असमर्थ रहे तो वह जीवित प्रेत की कोटि में आ जाता है ।

इससे साफ प्रकट है कि इनको दो वर्गों में बांट सकते हैं — सिद्धांत और आदर्शरहित क्षुद्र मानव, तथा सिद्धांत को अपनाकर उस पर चलने में असमर्थ ओछे लोग । इन दोनों वर्ग वालों से समाज की उतनी बड़ी हानि तो नहीं होगी लेकिन ये लोग जब तक जिंदा रहें, भूमि का भार बने रहेंगे । बस ।

आजकल एक नया वर्ग सिर उठाने लगा है । ये अंतड़ियों में लगे कृमियों जैसे हैं। इन्होंने अपने दिमागों में बड़े-बड़े सिद्धांतों को भर लिया है । उन्हें बेचकर भी पेट पालते हैं । ये लोग सार्वजनिक सभाओं में खड़े होकर विस्तार से उनको उपदेश देते फिरते हैं। आम जनता इनके उन महान सिद्धांतों के बारे में सुनकर भ्रमित हो, यह सोचकर उनको आदर देने लगती है कि और उच्चादर्शों का आलम बना इनका हृदय ही असल में हृदय है, और ये लोग महान व्यक्ति और अवतार पुरुष हैं, तो ये लोग प्रफुल्लित मन से उस आदर-सत्कार को स्वीकार करके गर्वित हो उठते हैं। लेकिन अगर इन महान हस्तियों का पीछा करके उनके यहां जाकर देखा जाये तो वहां कूड़ा-करकट और दुनिया भर का मैल भरा पायेंगे । इन महान व्यक्तियों के कर्म और आचरण उनके कथित सिद्धांतों के बिलकुल विपरीत होते हैं । "टोकने वाला न हो तो मैया की चंड-प्रचंडता का क्या कहना !" इस तमिल कहावत के अनुसार गरमागरम भाषण झाड़ते हैं । और आफत की घड़ी में बघारने लगते हैं कि "आप लोगों को मेरे कहे अनुसार चलना है, मेरे आचरण का अनुकरण नहीं करना है ।" यों लोगों की आखों में धूल झोंक देते हैं। इससे भी बुरी बात यह है कि ऐंद्रजालिक के समान अपने सिद्धांतों को भी बदल लेते हैं ।

इन द्रोही पापियों द्वारा हमारे देश को जो घोर क्षति पहुंच रही है, उसकी कोई गिनती नहीं । क्योंकि इनकी देखा-देखी, कई मूढ़ लोग गुमराह हो जाते हैं । हमें उन्नत सिद्धांतों की अपेक्षा है, व्यक्तियों की नहीं । अगर कोई व्यक्ति अपने श्रेष्ठ सिद्धांत की घोषणा कर उसके विरुद्ध चलने लगे तो भी उसका आदर करते रहना हमारी मूर्खता है । हमें तो उनको नीचा दिखाना है, अपमानित करना है। अगर कोई एक प्याला कॉफी, खाना और कपड़े के लिए अपने श्रेष्ठ सिद्धांतों को त्याग दे तो उसकी गिनती किसमें करें ? ओह ! उससे तुच्छ, नीच, पतित व्यक्ति कोई और नहीं हो सकता। जहां तक उसका सवाल है, उसकी

कथनी और करनी में बड़ा अंतर है ।

हम भारतवासी आज परतंत्र हैं। अपने समस्त अधिकार और स्वतंत्रताएं खो बैठे हैं। कहीं से आये गोरी जाति वालों के गुलाम बने पड़े हैं । हम तीस करोड़ लोग हैं । उनकी संख्या दो लाख भी नहीं । सारी दुनिया इसे अनोखी बात मानती है । इसका अर्थ यह भी नहीं है कि हम तीस करोड़ लोगों पर शासन करने वाले अंग्रेजों को दुनिया के और देशवाले बड़े योद्धा, अद्वितीय बलवान मानते हैं । लेकिन हम उनकी दृष्टि में गिर गये हैं, हमारे प्रति उनमें नफरत और अनादर की भावना हो जाती है । जहां भी जायें भारतीयों की अवहेलना की जाती है । लोग हम पर थूकते हैं । लोगों को इसका विश्वास हो गया है कि ये भारतवासी भेड़ों के गल्ले हैं । अंग्रेज क्या, जो भी कौम चाहे इन पर शासन कर सकती है । ऐसी हालत में हम बड़प्पन दिखायें वह अनुचित होगा । स्वाधीनता प्राप्त करने के बाद हम मूंछों पर ताव दे सकते हैं। अब ठाठ दिखायें तो जग-हंसाई होगी ।

प्रत्येक भारतीय नारी और पुरुष के लिए माननीय सिद्धांत एक ही है । अपनी प्यारी मातृभूमि को आजाद कराकर ऐसा जीवन बितायें कि अन्य कौमें भय-त्रस्त होकर हमारा आदर करें । इस लक्ष्य तक पहुंचने में जो विघ्न-बाधाएं उपस्थित हों, उनकी परवाह न करके हमें आगे बढ़ते जाना है । इस मंजिल तक पहुंचने में हमें किसी प्रकार की सुख-सुविधा, आराम व प्रतिष्ठा के पीछे नहीं पड़ना चाहिए । चाहे घर-बार, बाल-बच्चे, पत्नी आदि सब कुछ खोना पड़े तो भी उसके लिए तैयार रहना है ।

"मेयूवरुत्तम पारार् पसिनोक्कार, कणतुंजार
एव्वेवर तीमैयुम् मेर्कोळ्ळार, सेवि
अरुमैयुम पारार् अवमदिप्पुम् कोल्लार
करुममे कण्णायिनार्"

इसका अर्थ है - 'कर्मशील व्यक्ति अपने शारीरिक श्रम, भूख, प्यास, नींद का ख्याल नहीं करेगा । कोई उसे दुख व संताप पहुंचाये, या कष्ट दे उसकी परवाह नहीं करेगा । अपने पावन कर्तव्य पर अटल रहने वाला कर्मठ व्यक्ति मान-अपमान का भी ख्याल नहीं करेगा ।

पूर्व पुरुषों की इस सूक्ति के अनुसार हमें चलना है । जो ऐसे आदर्श को अपनाने में असमर्थ है, उसे अपनी कायरता स्वीकार करके हार माननी चाहिए । 'मैं भी आजादी के लिए संघर्ष करने वाला आदर्शवादी हूं', इस प्रकार कहकर, गर्व करने की आवश्यकता नहीं । जिसने स्वराज्य आंदोलन में भाग लिया है उसे अपनी आत्मा के अलावा अपना सर्वस्व न्योछावर करने को तैयार रहना चाहिए । हे ! भारतवासियो ! आलसी का कोई सिद्धांत नहीं होता । धूप हो या वर्षा, भूख-प्यास, आंधी, पानी, जो भी हो, उनका ख्याल न करना। जब यह शरीर ही क्षणभंगुर है, जब ये झंझट शाश्वत हैं, इंद्रियों की भूख से घबराकर, ऐंद्रिय सुखों के पीछे पड़कर स्वराज्य धर्म को मत छोड़ो । ब्रह्म ही सत्य है। सत्य

ही विजय है। तुम्हें परतंत्रता के बंधन से मुक्त होना है । यही नहीं, अपनी विजय का डंका बजाते हुए इस संसार के कोने-कोने में जो-जो परतंत्रता की बेड़ियों में जकड़े हुए हैं उनको आजाद करना है । तुम्हें अपने कर्म द्वारा भारत-माता को पूर्ववत संसार के उन्नत भाल का तिलक बनकर उज्ज्वल रहना है । कहे देता हूं, अपने इन सिद्धांतों को त्यागो मत .... मत छोड़ो।

ज्ञान-रथ

(एक अंश)

संध्या का समय था। तिरुवल्लिकेणी वीरराघव मुदली गली में खड़ा समुद्र की तरफ देख रहा था । मैं एक मकान के चबूतरे पर लेटा आराम कर रहा था । कमरे के चारों तरफ की शीशे की खिड़कियों और पीछे के दरवाजे से होकर सुखद, शीतल हवा के झोंके पूरे कमरे में व्याप्त हो रहे थे। संध्या के झुटपुट आलोक में, सुहावनी हवा की आनंदानुभूति मुझ में जो माधुर्य और मस्ती भर रही थी वह वर्णनातीत है । सोचा – अहा ! अभी जाकर स्नान करूं और बढ़िया घोड़ागाड़ी में सवार होकर, समुद्र के किनारे अडैयार तक जाऊं और रास्ते भर कालिदास के शाकुंतलम् या किसी उपनिषद का रसास्वादन प्राप्त करता रहूं तो कितना अच्छा होगा ? तभी याद आया कि मेरे पास घोड़ागाड़ी नहीं ।

ख्याल आया – हाय रे ! धन के अभाव मे लोग दुनिया में कई तरह के निकृष्ट ऐहिक सुखों से ही नहीं, उत्कृष्ट सुखों से भी वंचित रह जाते हैं, है न ? मेरी अंतरात्मा ने टोका, 'अरे मूर्ख कहीं के ! भगवान ने सब मनुष्यों को ज्ञान रूपी अलौकिक रथ प्रदान किया। उसमें इच्छित दिशाओं पर जाकर मनचाहे दृश्यों का आनंद लूटने की शक्ति है । तो फिर ऐसी घटिया गाड़ी में सवारी करना चाहते हो ? जो तुम्हें सुख दिये बिना न जाने किस क्षण गिरा दे ।' तुरंत मैंने अपने 'संकल्प' को ज्ञान-रथ तैयार करने की आज्ञा दी । रथ आकर मेरे सम्मुख खड़ा हो गया । मैं तत्क्षण उस पर सवार हो गया । लेकिन मेरा ज्ञान-रथ औरों के रथों जैसा वेगवान नहीं । पल भर में बड़ी दूर तक उड़ा ले जाये, ऐसी द्रुतगतिवाला भी नहीं । जरा लंगड़ा है । क्या करें ? जो कुछ है, उसी से काम चलाना है न ? इसीलिए उस रथ पर आरूढ़ हो गया । इस ज्ञान-रथ पर आरूढ़ होकर मैंने जो कुछ देखा, उन्हीं अनोखे दृश्यों और अद्भुत बातों का वर्णन यहां किया जा रहा है ।

उपशांति लोक (चिंताहीन लोक)

"दुखरहित स्थान जहां भी हो, मुझे इसी क्षण वहां ले जाओ" – ज्ञान-रथ को देखते ही मेरे मन में यह विचार आया । सोचा – हाय ! ऐसे बढ़िया रथ के होते हुए इतने दिनों तक दुख एवं चिंता मार्ग से छुटकारा पाने से अपरिचित रहा । ओह ! कितने दिनों तक मेरा दिल आंकड़ी में फंसे कीड़े के समान तड़पता रहा, और उससे निवृत्त होने का उपाय

न जानकर मैं कितना अकुलाता रहा ! हाय ! सांसारिक जीवन की चिंताओं की याद करके दिल घबरा जाता है। उसकी घातक, विषैली शक्ति का क्या कहूं ? ये चिंताएं चेहरे के सौंदर्य और तारुण्य को एकदम मिटा देती हैं । आंखों की चमक मंद पड़ जाती है। शरीर पीला पड़ जाता है । इस घातिनि के कारण, माथे पर शिकनें पड़ जाती हैं और कपोलों पर झुर्रियां । मेरी मीठी आवाज कर्कश बन जाती । मेरी छाती एवं भुजाओं की शक्ति न जाने कहां गायब हो जाती । रक्त-संचार की गति तीव्र नहीं रहती, वह तो मैल भरी नाली-सी मंद पड़ जाती । पैर कमजोर हो जाते हैं । हाय ! चिंता रूपी विषैले कीड़ों का शरीर के अंदर ही अंदर घुन लग जाता है जो शरीर का ही नहीं, बुद्धि का भी नाश कर देते हैं । स्मरण-शक्ति कमजोर हो जाती, जरूरी बातें ऐन वक्त पर याद नहीं आतीं । मरुभूमि पर बरसती वर्षा के समान, सारा ज्ञान, सारी पढ़ाई निष्फल हो जाती है । बुद्धि मेघाच्छन्न आकाश-सी धूमिल हो जाती है । हाय ! चिंता रूपी इन घातक विषैले कीटाणुओं की शक्ति, वैद्य-शास्त्रज्ञ के बताये, आंखों के लिए अदृश्य भयंकर बीमारियों के कीटाणुओं में भी नहीं।

मैंने आज्ञा दी, "हे ज्ञान रथ ! अब मुझे चिंतारहित दुनिया में ले जाना ।" तुरंत मन ने आकर टोका– ओह ! वह तो उतना सुखमय नहीं है । चिंतारहित होना मात्र काफी है क्या ? और सुखों को भोगने योग्य स्थान आपकी याद में नहीं आया ? मुझे लगता है कि जहां चिंता नहीं, वहां सुख भी नहीं होता । इसके अलावा .... बता नहीं पाता कि और क्या कारण है। बस इतना ही कहूंगा – आपका वहां जाना मुझे अच्छा नहीं लगता ।

मन के यों कहते ही मेरा पारा चढ़ गया – 'छिः छिः, पागल मन कहीं के ! लगातार दुख, वेदना और व्यथा से पीड़ित तुम पर तरस खाकर, मैंने सोचा था कि कम से कम थोड़ी देर के लिए तुम्हें शांति की ओर ले जाऊं । लेकिन तुम स्वयं इसका विरोध करते हो !' मेरी यह डांट सुनकर भी मन अपनी बात पर अड़ा रहा । सहमत न हुआ ।

मन रूपी मोहिनी पर मेरा बड़ा मोह है। यह मोह का नशा कैसे चढ़ा था, इसका वर्णन यहां कर नहीं पाता । यह तो रहस्य की बात है । कालांतर में मैं उस पर इतना मुग्ध हो गया कि मन और मेरा अलग-अलग अस्तित्व है, यह द्वैत भावना ही न रही। मन की यह विकलता मुझसे सही न गयी और उपशांति लोक के दर्शनार्थ विह्वल हो उठा। लेकिन मन को यों मेरे सुझाव पर नाराज होते देख मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ और गुस्सा आया । मैंने उसे शांत करने की बड़ी कोशिश की । लेकिन हठीला मन टस से मस न हुआ । अपनी बात पर अडिग रहा । मेरी समझ में न आया कि क्या करूं ? फिर तो दृढ़ता भरे स्वर में कह दिया, 'रे मन ! इस बात पर मैं तुम्हारा आदेश नहीं मानूंगा । तुम्हारी भलाई के लिए ही कर रहा हूं यह ।'

अच्छा-अच्छा ! ज्ञान-रथ ! हम चलेंगे ।

अगले कुछ मिनटों में हम उपशांति लोक पहुंच गये ।

गगनचुंबी किले की चहारदीवारी के प्रधान द्वार पर रथ रुक गया । दूर से ही वह किला दिखाई दे रहा था और मेरा ख्याल था कि रथ के पहुंचते ही द्वार अपने आप खुल जायेगा । लेकिन वह हुआ नहीं । ओह ! कैसे आश्चर्य की बात है ? 'यह लोक इतना पवित्र है कि ज्ञान-रथ भी प्रवेश न कर पाया', यह सोचकर मैं हैरान रह गया। मेरा मन तो पहले से हजारों गुना ज्यादा कांपने लगा। मुझसे कुछ कह न पाया बेचारा । किले के द्वार पर एक द्वारपाल नंगी तलवार लिये खड़ा था । प्रज्ज्वलित अग्नि सी लाल और हिमालय को भी एक ही वार में चूर-चूर कर देने वाली ऐसी करारी तलवार पर आंखों को चौंधिया देने वाले अक्षरों में अंकित था 'विवेक' । द्वारपाल ने प्रश्न किया, "कौन हो तुम ? क्यों आये हो ?"

मैं उसकी वंदना करके बोला, "उपशांति लोक के दर्शन करने आया हूं ।" यह सुनते ही वह ठहाका मारकर हंस पड़ा ।

"क्यों हंसते हो भई ?" मैंने पूछा । वह तो बिना उत्तर दिये ही हंसता रहा । बेचारे मन की घबराहट हर क्षण बढ़ती जा रही थी । इधर मैं तो हैरान था ही, मारे गुस्से के उसकी ओर देखकर पूछा, "अरे ! एक ही शब्द में कह दो । मैं अंदर जा सकता हूं कि नहीं ? क्यों हंस रहे हो ऐसे ?".

इस पर वह गुनगुनाया, "अरे ! तुममें और उपशांति में बड़ी दूरी है" (यह गुनगुनाहट मेरे कानों तक पहुंची थी), फिर जोर से बोला, "नाराज न हो, भाई ! उपशांति लोक जैसे कोई नाटकशाला हो कि तुम उसे देखकर लौट जाना चाहते हो," उसकी यह बात सुनकर मुझे हंसी आ गयी । उसने कहा, "साधारणतया जो यहां आते हैं वे लौटकर जाते नहीं।"

"ठीक है। अब हम अंदर प्रवेश कर सकते हैं कि नहीं ? कृपया बता दो ।"

"तुम आ सकते हो । यह तो समस्त जीवों के लिए मां का घर है । यहां पर आने से किसी जीव को रोकने का मुझे कोई अधिकार नहीं । लेकिन वैराग्य के किले को पार कर अंदर प्रवेश करने का अधिकार, तुम्हारे साथ आये मन रूपी मिथ्या वस्तु के लिए नहीं। वह अंदर प्रवेश करे तो अग्नि लोक में गये कपास के पुतले सा भस्म हो जायेगा ।"

तभी मेरी समझ में आया कि उपशांति लोक का नाम सुनते ही मेरा मन क्यों थर-थर कांप उठा और मुझे यहां आने से रोका था; किले के निकट आते ही धर्म देवता के सम्मुख पेश किये गये अत्याचारी राजा के समान अपना होशोहवास भूलकर त्रस्त हो उठा था। अब तो इस लोक में प्रवेश करने का उत्साह मुझे नहीं रहा । ~~मन के~~ प्रति मेरा इतना मोह था कि उसकी हत्या करके खुद भोगने की इच्छा नहीं रही ।

द्वारपाल से पूछा, "कहो ! अब मैं क्या करूं ?" उसने उत्तर दिया, "रे मनुष्य ! मन के मिटने के बाद ही उपशांति की प्राप्ति होगी । जब तक उसका अस्तित्व है, चिंता से मुक्त रहने की इच्छा बेकार है । चिंता रूपी असुरों को लगातार जन्म देती रहने वाली माता मन ही है । उस मायाविनी के प्रति तुम्हारी मोहांधता कम नहीं हुई है । परिपक्व अवस्था

को प्राप्त करने के उपरांत तुम यहां आ सकते हो — अब चले जाओ ।"

बस ! पल भर में वह किला, द्वारपाल सब कुछ विलीन हो गया । पल भर के लिए आंखों में अंधेरा सा छा गया । फिर जब आंखें खुलीं तो देखा, उसी वीरराघव मुदली गली में उसी मकान की ऊपरी छत पर, कमरे के अंदर खाट पर लेटा हूं और समुद्र की तरफ से ठंडी-ठंडी हवा चल रही है ।

"अच्छा ! जाने दे ! उपशांति लोक का भाग्य भले ही हमें न मिला है। परवाह नहीं! बेचारे मन की हत्या करके, खुद सुख आंनद लूटना कृतघ्नता है न ? बेचारे मन की चिंता और दुख के बारे में सोचा था, बस। उससे मुझे जो बड़ा लाभ हो रहा है, उसका ख्याल न किया । मन के कारण मुझे यह जीवन मिला है । मन को ईश्वर कहना भी अत्युक्ति नहीं । इसके अतिरिक्त मेरे लिए वह, और उसके लिए मेरे अलावा, इस धरती पर कौन अभिन्न साथी है ? उसके प्रति द्रोह करूं क्या ? चाहे करोड़ों चिंताएं पीड़ित करें, परवाह नहीं। मन के बिना मुझे अकेले जीना है तो वह उपशांति लोक चाहे जितना भी अनुपम व अलौकिक हो, मुझे नहीं चाहिए ।" ऐसा मैंने दृढ़ निश्चय कर लिया । मन ही मन कहा, 'उपशांति -शांति ...' ऐसा चिल्लाने वालों को यह दुनिया ब्रह्मज्ञानी एवं महर्षि के नाम पर पूजती है न — असल में वे लोग बड़े मूर्ख और द्रोही हैं ।

मुझें यों विचार करते देख, मन ने एक लंबी आह भरी । वह अभी थोड़ा आश्वस्त हुआ था । उसकी घबराहट दूर होने लगी और मैंने भी चैन की सांस ली और मन रूपी मोहिनी को चुंबन दिया ।

(केवल पहला अध्याय यहां पर दिया गया है ।)

भगवत्गीता की भूमिका

"हे अर्जुन ! समत्वबुद्धि योग युक्त पुरुष, पुण्य और पाप दानों को इस लोक में ही त्याग देता है, अर्थात् दोनों में लिप्त नहीं होता । इसलिए तू समत्वबुद्धि योग से युक्त हो जा, क्योंकि यह समत्व योग ही कर्म कौशल है ।" (गीता दूसरा अध्याय; पचासवां श्लोक)

गीता में भगवान जो उपदेश देते हैं, यही उसकी आधारशिला है । समत्व बुद्धि से युक्त होना, माने बुद्धि को निष्काम, निर्विकार रखना है । ऐसी अलिप्त निष्काम्य बुद्धि ही इस श्लोक में बुद्धि कही गयी है। बुद्धि को निष्काम्य से निर्विकार स्थिति में रखने का अर्थ है कि चिंताओं और उनके आधार रूपी पापी विचारों से बुद्धि को मुक्त रखना ।

'आप शिशु तुल्य न बनें तो मोक्ष साम्राज्य की प्राप्ति न होगी' – महात्मा ईसा के इस उपदेश का अर्थ भी यही है ।

'शिशु तुल्य बनो', इसका अर्थ यह नहीं कि आप अपने लौकिक अनुभवों को भूल जायें तथा अर्जित ज्ञान एवं विद्या त्याग दें और नवजात शिशु के समान मां का स्तन्य पान करके तुतलाती बोली में बातें करने लगें । इसका तात्पर्य यह है कि आप अपने हृदय को शिशु तुल्य, निष्कलंक एवं निर्मल रखिये । बस ।

जब तक हृदय निर्विकार एवं निश्चल नहीं होता, बुद्धि निश्चल नहीं होती, जब तक हृदय पूर्ण रूप से विकाररहित नहीं होता, बीच-बीच में बुद्धि शांत होने पर भी, फिर चकरा जायेगी ।

निर्विकार हृदय में निश्चल बुद्धि का उदय होगा । भगवान कहते हैं, "हे अर्जुन ! समत्वबुद्धि से युक्त, निष्काम्य योग स्थिति में रहो । इस स्थिति में तुम जो भी कर्म करोगे, वह पुण्य कर्म ही होगा । तुम निष्क्रिय रहो, तो वह भी अच्छा होगा । तुम सत्कर्म, दुष्कर्म आदि भेदों को भूलकर अपनी इच्छा पर जो चाहे कर सकते हो । क्योंकि समत्वबुद्धि युक्त योग स्थिति में तुम्हारा कर्म पापकर्म न होगा । तुम्हारी बुद्धि निष्काम्य, निर्विकार हो गयी न ? तब तो तुम से पापकर्म कभी न होगा । इसलिए पाप-पुण्य का विचार न करके, इच्छित कर्म में रत रहो ।"

उक्त श्लोक का अर्थ इस दृष्टि से न लेकर, पापकर्म, पुण्यकर्म दोनों को छोड़कर अर्थात् सब तरह का कर्म त्यागकर हे अर्जुन ! तुम हमेशा निष्क्रिय रहो – यही भगवान का उपदेश है, ऐसा मानना मूर्खता के अलावा और कुछ नहीं ।

क्योंकि आगे तीसरे अध्याय में भगवान ने कहा है, "कोई भी पुरुष एक क्षण के लिए भी बिना कर्म किये रह नहीं पाता । समस्त जीव, प्रकृतिदत्त गुणों के कारण अपने आप ही कर्मरत रहते हैं । इस पर उनका वश नहीं ।"

इसलिए मनुष्य को कर्म का अनुष्ठान करना ही पड़ेगा । कुंभकर्ण भी हमेशा निद्रामग्न नहीं रह सकता था । उसे भी छह महीने का जागरण था । लेकिन कर्म करते वक्त, उस कर्म द्वारा प्राप्त कष्टों पर दुखी होकर, व्याकुल रहने वाले लोगों के जैसे तुम कर्म न करो। भगवान कहते हैं, "कर्म-फल की आसक्ति के बिना जो अपना स्वधर्म पालन करता रहता है वही वीतरागी है । वही योगी है ।"

समत्व बुद्धि से विचलित न हो जाना। अनवरत् कर्मरत रहना । तुम जो भी करो उसका फल अच्छा ही होगा । तुम निष्क्रिय रहो तो भी तुम्हारा मन स्वतः ही कर्म में रत रहेगा, भला करता रहेगा । शरीर से जो कर्म करते हैं, केवल वही कर्म नहीं मन द्वारा कृत कर्म भी कर्म है । जप करना कर्म नहीं है क्या ? शास्त्र, कविता, नाटक, वेद, शास्त्र, नियम, पुराण, कथा-कहानी आदि सब सृजनात्मक कर्म नहीं हैं क्या ? ये सब शरीर-कृत कर्म नहीं, मन से कृत कर्म हैं न ?

बुद्धि को भ्रम में न पड़ने दो ।

आगे कृष्ण कहते हैं, "योग करो । क्योंकि योग ही समस्त कर्मों में कौशल है ।"

कर्म के योग्य अपने आप को बनाना ही योग है। योग माने समन्व । "समन्वम् योग उच्चयते", अर्थात् निश्चल मन से, अनासक्त रहते हुए, चित्त में भय के बिना उसी में मस्त रहना, मन की पूरी तन्मयता की साधना है ।

एक वस्तु में चित्त लगाते वक्त तुम्हारा मन वही बन जाता है तभी वस्तु के तुम सच्चे जानकार बनोगे । भगवान कहते हैं, "योगस्थः कुरु कर्माणि", योग में स्थित होकर कर्म करो।

योगी अपने ज्ञान को ईश्वरीय ज्ञान सा व्यापक बना सकता है । क्योंकि ध्यान स्थित होना, देखना उसके लिए बोधगम्य हो जाता है । इसलिए उसका ज्ञान विशाल हो जाता है । अलौकिक बन जाता है । उसका ज्ञान सीमाहीन है ।

इसलिए वह ईश्वर को समस्त सृष्टि में देखता है ।

वेदों में कथित सिद्धांतों की व्याख्या के रूप में भगवत्गीता की रचना हुई । ऋग्वेद का पुरुष सूक्त कहता है, "पुरुष एवेंद सर्वं, यद्‌भतं यच्च भव्यम् ।" इसी को गीता में भगवान कहते हैं, "हे अर्जुन ! जो संपूर्ण भूतों में आत्मा को देखता है और संपूर्ण भूतों को आत्मा में देखता है, वही दर्शक है ।"

तुम स्वयं ईश्वर हो । तुम्हारे द्वारा किये जाने वाले कर्म ईश्वरीय कर्म हैं। तुम्हारा बंधन में पड़ना ईश्वरीय इच्छा है । और कई बंधनों में तुम्हारा लिप्त होते जाना भी ईश्वरीय कर्म है । तुम्हारा बंधनयुक्त होना भी उसी की इच्छा है, विधान है ।

तब तो बंधनमुक्त होने के लिए मैं क्यों प्रयत्नशील रहूं ? अगर सब कुछ ईश्वरीय इच्छा से चलता हो तो मुक्ति पाने के लिए मैं क्यों प्रयत्न करूं ? कोई ऐसा प्रश्न करे तो मैं उससे पूछता हूं , "मुक्ति का अर्थ क्या है ?"

सब तरह के दुख, भय एवं चिंता से मुक्त रहने की इच्छा ही मुक्ति है । यदि उसे प्राप्त करने के लिए तुम इच्छुक हो तो उसके योग्य प्रयत्न करो, नहीं तो दुख एवं चिंता में अनवरत उलझे रहोगे; तुम्हें रोकने वाले कौन होते हैं ? मगर जो भी कर्म करो, इस बोध के साथ करो कि इसमें मेरा वश नहीं - ईश्वर की इच्छा है । इससे तुम्हारा भला होगा, ऐसा शास्त्र कहता है। "सर्वम् विष्णुमयम् जगत्", यह तो सनातम धर्म का सिद्धांत है। सब कुछ ईश्वरमय है । समस्त जगत, समस्त जीव, जड़, चेतन, दृश्य, अदृश्य वस्तुएं, समस्त कर्म, ईश्वरीय हैं । ईसावास्योपनिषद कहता है, "ईसा वास्यम् इदम् यत् किंचित् जगत्याम् जगत", अर्थात् इस संसार में जो कुछ घटित जोता है, वह ईश्वरमय है। इसी तत्व को भगवान ने गीता में कहा है – सारे जगत में व्याप्त परमात्मा अविनाशी है ।

इस जगत में सर्वस्व ईश्वरीय अंश है, समस्त कर्म ईश्वर का है, तो चिंता करना व दुखी होना मूर्खता के अलावा और क्या हो सकता है ?

सब कुछ ईश्वरीय इच्छा है, कर्म है तो हम क्यों चिंतित हों ? (क्या मेरे माथे पर जिसने प्रारब्ध का लेख लिखा है वह शिवजी मर गया ?)

समस्त तारागण ईश्वर के आदेश पर घूमते हैं। तीनों लोक उसकी शक्ति से संचालित हैं। तुम ही वह हो । तुम्हारा मन, तुम्हारा चित्त, चित्त की समस्त वृत्तियां, सब कुछ वही है । "सर्वम् विष्णुमयम् जगत्" – अरे ! मानव ! तुम क्यों व्यर्थ का भार ढोते फिरते हो ? अरे ! सारा भार एकदम उतार फेंककर निश्चिंत होकर अपना कर्म करते रहो । जो जैसा चाहे रहे । तुम्हें क्या ? क्या तुमने इस संसार की सृष्टि की है ? संसार कहते ही अपने को छोड़कर, अन्य जगत की गणना मत करना । तुम जिसमें हो, उस जगत को, तुम्हारे होने के पूर्व ही बनाया है, तुम्हें पाल-पोसकर बड़ा किया है। रे मानव, क्या तुमने जगत का सृजन किया है ? क्या तुम्हीं इस जगत के संचालक हो ? क्या ये तारकमंडल तुम्हारे ही इशारे पर चलते हैं ? इस संसार में अपनी इच्छा पर तुमने जन्म लिया है क्या ? फिर ये हर बात की जिम्मेदारी तुम अपने ऊपर क्यों लिये फिरते हो ?"

भगवान कहते हैं, "हे अर्जुन ! राग, भय और क्रोध से रहित अनन्य भाव से मेरे में स्थित तथा मेरी शरण में आए बहुत से महापुरुष ज्ञान रूपी तप से मेरे स्वरूप को प्राप्त कर चुके हैं ।" (गीता चौथा अध्याय, दसवां श्लोक) इस श्लोक में इहलोक में ही जीवनमुक्त होकर, ईश्वरीय स्थिति पाने का उपाय बताया गया है । भगवान कहते हैं, "ज्ञान रूपी तपस्या की साधना करो । राग, क्रोध व इच्छा को त्यागो । मेरी शरण लेकर मुझमें स्थित हो जाओ तो मेरे स्वरूप को प्राप्त करोगे ।"

भगवान कहते हैं, "हे अर्जुन ! जो पुरुष संपूर्ण कर्म को परमात्मा के आश्रय से करता

है, मन व इंद्रियों में आसक्ति नहीं रखता, वह पापों में इसी प्रकार लिप्त नहीं होता जैसे कमल का पत्ता जल में रहकर भी जल से अलिप्त रहता है ।" (गीता पांचवां अध्याय, दसवां श्लोक)

हे मानव ! यह कितना मार्मिक संदेश है। पाप से बचने का मार्ग न जानकर व्याकुल रहने वाले हे मनुष्य ! भगवान ने इस श्लोक द्वारा तुझे सत् मार्ग दिखाया है । भगवान का ध्यान करके किये गये समस्त कर्म उसके हैं, उसी के लिए किये जाते हैं, ऐसे अकर्ता की अनुभूति लिये, तुम जो भी कर्म करोगे, उसमें पाप नहीं लगेगा । कमल के पत्ते से बह जाने वाले जलकण के समान पाप तुम्हारे चित्त को लुभा नहीं पायेगा, फिसलकर बह जायेगा।

भगवान कहते हैं, "मनुष्य में किसी कर्म का कर्तापन नहीं । कर्म करने का कौशल भी भगवान ने उसे नहीं दिया है। कर्म के फल को वह भोगता भी नहीं । सब कुछ प्रकृत धर्म पर चलता है ।" (गीता, पांचवां अध्याय, चौदहवां श्लोक)

तब तो, मनुष्य अपने कार्य का कर्ता नहीं । अपने कार्य पर उसे चंचल होने, ईर्ष्या करने की आवश्यकता नहीं । अपने कर्म पर यह बाधा बनेगा, ऐसा सोचकर अन्य जीवों से संघर्ष न करो ।

भगवान कहते हैं, "पंडित अर्थात् यथार्थ बुद्धि आत्मज्ञानी, विद्यासंपन्न, विनयशील, ब्राह्मण, गाय, हाथी, कुत्ते, और उसे खाने वाले चांडाल आदि समान दृष्टि रखने वाले होते हैं ।"

"आत्मवत् सर्वभूतेषु"। संपूर्ण जीवों को अपने ही तुल्य निश्चित भाव से देखना, जातिभेद, बुद्धिभेद की दृष्टि से न देखना ही ज्ञानियों के लक्षण हैं – ऐसा भगवान कहते हैं ।

सारी सृष्टि ईश्वरीय है न ? हर जीव में विष्णु स्थित हैं न ? "सर्वमितम् ब्रह्मम्" सांप भी नारायण हैं । शृगाल भी वही हैं । ब्राह्मण भी ईश्वर हैं, चांडाल भी । तब तो एक जीव का दूसरे जीव को अपने से हेय मानना अज्ञान का लक्षण है । ऐसे ऊंच-नीच की भेद भरी दृष्टि रखने वाले, कभी दुख से निवृत्त नहीं होंगे । जहां भेद दृष्टि है, वहां भय है, आफत है, मृत्यु है । समस्त भेदभावों से मुक्त रहना ही ज्ञान है । वही मुक्ति है ।

(भारतियार ने गीता का अनुवाद किया है और एक सुंदर भूमिका लिखी है । उसी का एक अंश यहां दिया गया है ।)

चंद्रिका की कथा

पोतिकै पहाड़ के पर्वतीय आंचल में वेळानगुड़ी नामक एक सुंदर गांव बसा है। गांव को छूती हुई एक छोटी नदी बहती है । चारों तरफ जहां देखें, सुनील पर्वतमालाओं के शिखर और हरे-भरे टीले ही नजर आते हैं । सारा गांव घने बाग-बगीचों से घिरा है, सूर्योदय से सूर्यास्त तक विविध पक्षियों की मधुर कलरव ध्वनि गूंजती रहती है ।

इस गांव में बस्ती से जरा हटकर, पश्चिमी दिशा पर, नदी के निकट ब्राह्मणों का मुहल्ला अर्थात् वीथी थी । उस मुहल्ले के बच्चों की आवाज, शायद चहकते पक्षियों के मधुर कल-कल निनाद के बीच में पकने के कारण बड़ी मीठी और सुरीली थी । वे बच्चे, खासकर लड़कियां हम जैसी ही तमिल-भाषी थीं। फिर भी उस भाषा को, वे इतने मीठे, मधुर, स्वर में बोला करती थीं जैसे कोयल कूकती हों; तोते चहकते हों, नागणवाय चिड़ियां कलरव करती हों।

उस मुहल्ले में पूरब दिशा की ओर कृष्ण का एक मंदिर था । मंदिर के सामने हरी-भरी घास से लहराता मैदान था, जिसमें गाय, बैल और कुछ गधे चरते रहते । कुछ गायें, कृष्ण के मंदिर के सामने लेटी ऐसे जुगाली करती रहतीं, मानो भगवान का स्मरण कर रही हों, कौवे आ-आकर उन पर बैठते और मजे से उनके शरीर पर लगे कीड़ों पर चोंच मारते, उन्हें मीठी वेदना दिया करते । कभी-कभी आंखों के कोर पर चोंच मारने का अभिनय कर, गायों का मनोरंजन करते रहते । पेड़ों की डालों पर बैठी चिड़ियां यह सब देखकर विस्मय-विमुग्ध भाव से चहकती रहतीं ।

वेळानगुड़ी में ब्राह्मणों का वह मुहल्ला अपूर्व शांति, सौंदर्य एवं स्नेह का मूर्तिमान रूप था । मुहल्ले की स्त्रियां बड़ी रूपसी थीं । पुरुष लोग तो सुशील और गुणी थे ही, लेकिन उनमें ज्यादातर लोग गरीब थे । पैतृक संपत्ति के रूप में बाग,बगीचे, जमीन इत्यादि हर किसी के पास थोड़े-बहुत अवश्य थे । मगर उसमें से जो कुछ मिलता था वह पेट भर खाने के लिए भी पर्याप्त नहीं था। उसी सीमित आय में धोती, कपड़े, साड़ी, चोली, लहंगे, मुंडन, कर्णछेदन, जनेऊ, विवाहादि शुभ कार्य, गौने, सीमंत तिथि, त्यौहार, उत्सव, जलसे – इस प्रकार कुछ न कुछ खर्च लगातार संभालना पड़ता था। परिणामस्वरूप उस मुहल्ले के गृहस्थ लोगों की जमीन-जायदाद दिन-ब-दिन घटती रही, और अभाव बढ़ता रहा; बेचारे दुखी बने रहे । लेकिन घर के बड़े-बूढ़ों की यह मानसिक व्यथा न मुहल्ले के बाल-बच्चे जानते थे,

न पक्षीगण । मंदिर के सामने मैदान में लहलहाती हरियाली में चरती गायें और गधे भी नहीं जानते थे । ये सब हमेशा आनंद से कोलाहल मचाते, गाते, बजाते, हर्ष-विभोर रहते थे ।

इस मुहल्ले के ब्राह्मणों में एक व्यक्ति सर्वाधिक अभावग्रस्त थे। उनका नाम था महालिंग अय्यर । परिवार उनका बड़ा था, और मकान सबसे छोटा । बूढ़े मां-बाप, एक विधवा बहन, तीस वर्ष की पत्नी, पांच बेटियां – यही उनका परिवार था, अब छठवां बच्चा होने वाला था ।

इतने लोगों के पेट कैसे भर जायें ? पैतृक संपत्ति के नाम पर महालिंग अय्यर के पास कुछ नहीं था । परिवार के पोषण और कमाने के लिए यौवन की उमंग, उत्साह तथा आत्मविश्वास उनका साथ छोड़ चुके थे । उनकी उम्र चालीस वर्ष से अधिक न थी । मगर बच्चों की बढ़ती संख्या, पत्नी के उलाहने, बूढ़े मां-बाप के रोग, विधवा बहन की तरुणाई आदि के दुखों से पीड़ित महालिंग अय्यर की व्याकुलता इतनी बढ़ गयी थी कि उनके सिर के बाल एकदम पक गये थे, कमर झुक गयी थी, शरीर सूखकर कांटा हो गया था । पिचके गाल, धंसी आंखें, यौवन की मस्ती में, शृंगार के अति भोग से प्राप्त गरमी के रोग के चिह्न पीठ, कंधे और चेहरे पर विद्यमान थे ।

मार्गशीर्ष महीने की रात थी । आकाश पर घटाटोप अंधकार छाया था । तारे भी कहीं नजर न आते थे । सारे गांव वाले अपने-अपने घरों में दुबक गये थे । बाहर मूसलाधार वर्षा और तूफानी हवा विकराल रूप धारण कर चुकी थी । पल-दो पल में ऐसा भयंकर गर्जन होता मानो दुनिया चूर-चूर हो जायेगी । कहीं पेड़ों के टूट-टूटकर गिर जाने की आवाजें आतीं । लगता, सारे बाग बगीचे तितर-बितर हो रहे हों । मानो आस-पास के टीले, पहाड़ आपस में टकरा रहे हों, ऐसी भयंकर आवाजें आ रही थीं ।

घर के अंदर दुबके पड़े लोगों ने मन में निश्चय कर लिया कि आज प्रलय आ गयी है, दुनिया का अंत होने वाला है । बाल-बच्चे डर के मारे चीख-पुकार मचाने लगे । स्त्रियां बिलख उठीं । पुरुष सिसकने लगे । बवंडर की भीषणता बढ़ती जा रही थी ।

एकाएक भूमि हिल उठी । भूकंप आ गया । उस मुहल्ले के मकान प्रायः पुराने थे। उनमें एक भी साबुत न बचा, सब-के-सब ढह गये । उनमें जितने भी लोग थे सब-के-सब मर गये ।

महालिंग अय्यर के मकान में बाहरी दरवाजे के पास एक छोटी सी कोठरी थी। बस, अब केवल वही खड़ी थी । घर के ओसारे में महालिंग अय्यर, उनके बूढ़े मां-बाप, उनकी पांचों बेटियां जो एक स्थान पर जमा थीं, गिरती दीवारों के नीचे दबकर मर गये । बाहरी कोठरी में महालिंग अय्यर की पत्नी को प्रसव वेदना हो रही थी। उनकी विधवा बहन उसके साथ थी ।

रात के सात बजे जो वर्षा और आंधी शुरू हुई थी, सवेरे चार बजे के लगभग भारी

भूकंप के साथ बंद हुई । आधे घंटे के अंदर सारा संसार पूर्ववत् शांत हो गया। अगले दिन पौ फटी । विधवा बहन विशालाक्षी अब बाहर निकली । देखा - सब घर ढह गये, टूट-फूटकर बिखर गये थे । जहां देखा मनुष्यों की लाशें, पशु-पक्षियों के मृत शरीर पड़े थे । पूरे गांव को देखने के लिए उसे अवकाश कहां ? हवा और पानी की चपेट में आकर जो गली में आ पड़े थे, उन्हीं लाशों को उसने देखा था । टूटे घरों के अंदर खंडहरों में धंसे पड़े लोगों को, उनके मृत शरीर को वह देख न पायी । लेकिन अपने घर में कोई जीवित न बचा यह उससे छिपा न था, इसलिए गांव की हालत का उसने अनुमान कर लिया । गली-कूचे में कहीं कोई नजर न आया। सारा गांव वीरान लग रहा था ।

पिछली रात की भयंकर, डरावनी बातें, स्मृति में तैरती रहीं। धरती के हिलते ही महालिंग अय्यर के वृद्ध पिता चिल्ला उठे, "हाय रे ! पृथ्वी हिल रही है ! भूकंप आ गया है रे ! आओ हम सब बाहरी कोठरी में चलें। मुझे वहां ले चलो ।" उनकी यह चीख विशालाक्षी के कानों तक पहुंची थी । इसके बाद का कोई संभाषण उसे सुनाई न दिया । बाहरी कोठरी में आना हो तो बाहर के ओसारे के द्वारा ही आना होगा । घर के अंदर से कोठरी में पहुंच नहीं सकते । फिर भी एक छोटी सी खिड़की द्वारा बूढ़े की चीख-पुकार मात्र बवंडर के हाहाकार को चीरती हुई उसके कानों तक पहुंची थी ।

उन लोगों का कोठरी में आना संभव नहीं था, यह उसे मालूम हो गया था क्योंकि बाहरी दरवाजे को खोलकर चबूतरे पर चढ़कर ही कोठरी में आना पड़ता । लेकिन यह कैसे संभव है ? दरवाजा खोलते ही सप्त मेघ और प्रलय सी आंधी घर के अंदर घुस जायेगी न ? विशालाक्षी ने सोचा, शायद इस डर से वे लोग बाहर न निकले होंगे । एकाध क्षण के अंदर, दीवारों के टूटकर गिरने की आवाज, लोगों के करुण चीत्कार उसे सुनाई पड़े। सोचा – ओह ! सब के सब मर गये होंगे । अब वह अपनी कोठरी की दीवारों के ढहने की प्रतीक्षा करने लगी । मगर क्षण बीतते गये, कोठरी गिरी नहीं। इतने में पृथ्वी का कंपन रुक गया । थोड़ी देर में वर्षा और आंधी भी थम गयी ।

विशालाक्षी पिछली रात की स्मृतियों में खोयी-खोयी सी, चारों तरफ के टूटे मकानों की गिरी दीवारों, धराशायी पेड़-पौधों को निहारती खड़ी थी कि कोठरी में से नवजात शिशु के रोने की आवाज आयी । वह उठकर दौड़कर गयी तो देखा भाभी गोमती ने एक बच्ची को जन्म दिया था ।

विशालाक्षी, नवजात बच्ची की तीमारदारी में व्यस्त थी कि इतने में गोमती मरणासन्न हो गयी । अंतिम सांस लेने के पहले उसने इतना ही कहा था, "विशालाक्षी, विशालाक्षी ! सुनो री । अब मैं दो मिनटों से ज्यादा जिंदा नहीं रहूंगी । अपने प्राण निकलने के पहले तुम से एक-दो बातें करना चाहती हूं । जब तक तुम्हारे शरीर में प्राण रहें उन्हें भूल न जाना । पहली बात यह है कि तुम पुनर्विवाह कर लो । विधवा-विवाह संगत बात है । स्त्री हो या पुरुष, दोनों समान रूप से काल देव के अधीनस्थ हैं । इसलिए स्त्रियां

पुरुष की गुलाम बनी, उनसे त्रस्त रहकर जीवनभर घोर यंत्रणा का शिकार न बनी रहें । सुनो ! स्वार्थलाभ के ख्याल से बने नीचतापूर्ण, नरकृत शास्त्र को फाड़कर चूल्हे में डाल दो । हिम्मत के साथ मद्रास चली जाओ। वहां पर विधवाओं की सहायता के लिए जो सभा है, उसका पता लगाकर उनके जरिये अपने लिए एक योग्य वर ढूंढ़ लेना । दूसरी बात यह है कि तुम आजीवन मेरी बच्ची की देखभाल करना । हां, उसका नाम 'चंद्रिका' रखना।"

विशालाक्षी ने कहा, "ठीक है ।" बस गोमती के प्राण-पखेरू उड़ गये ।

(भारती ने इस कहानी को लघु उपन्यास का रूप देना चाहा था लेकिन उनकी इच्छा पूरी होने के पहले ही कालदेव ने उनको अपने पास बुला लिया । विशालाक्षी की कथा (चंद्रिका) के अंतिम कुछ अध्याय बाकी रह गये । इसमें उक्त लघु उपन्यास का पहला अध्याय मात्र दिया गया है ।)

वेदकालीन ऋषियों की कथा

काशी विश्वविद्यालय की नींव डालते वक्त कई विद्वानों के भाषण हुए। इनमें नवीन शास्त्र (विज्ञान) के पंडितों के शिरोमणि श्री जगदीशचंद्र बसु का भाषण महत्वपूर्ण है ।

"लौकिक शास्त्रों अर्थात् भौतिक शास्त्रों के अन्वेषण में पुनः भारत देश को अग्रदूत बनाये रखना हमारा धर्म है," इस पर प्रकाश डालते हुए अंत में उन्होंने कहा — "हिंदू सभ्यता एवं संस्कृति में एक अलौकिक शक्ति है । काल के दुर्दमनीय ह्रास ने दुनिया भर में उथल-पुथल मचा देने वाले परिवर्तन किये हैं किंतु अपनी अलौकिक शक्ति के द्वारा हमारी सभ्यता इसका सामना करती आ रही है। नील नदी के तट पर, असीरिया देश में तथा पापिलोनिया में जो महान सभ्यताएं हजारों साल पहले विकसित होकर बदलती और मिटती रहीं, उस परिवर्तन को हमारी महान सभ्यता देखती रही । उन दिनों भी भारतमाता को अपनी चिरंतनता पर अचल विश्वास था और आज भी वह चिरयौवना है । और भविष्य में भी वह चिरकालिक बनी रहेगी, इस पर उसे पूरा विश्वास है ।"

नवीन विज्ञान रूपी विद्या के पर्वत पर ज्योतिर्स्तंभ के समान प्रकाश की किरणें बिखेरने वाले श्रीमान जगदीशचंद्र बसु के ये शब्द कोरे औपचारिक शब्द नहीं हैं। हमें मध्यकालीन युग के मूर्खतापूर्ण विचारों को अपने बड़प्पन की बात मानकर डींग मारने वालों की ओर ध्यान न देना ही न्यायसंगत होगा । इसके अतिरिक्त पंडित बसु ने जो कुछ कहा है उसे आदर के साथ स्वीकार करना है। मध्यकाल में, मिथ्यापूर्ण बकवास, निराशा और उदासी ने जो कूड़े-करकट के ढेर लगाये थे, उसके बोझ से हमारा देश दबा पड़ा था । भारत माता गहरी नींद में थी । अब तो उस कूड़े से निकलकर धैर्य रूपी पतित पावनी गंगा में डुबकी लगाकर हमारी भारत जाति अपने गगन-मंडल पर उदित सूर्योदय का अभिनंदन कर रही है ।

इस अमर जीवंत हिंदू संस्कृति रूपी कल्पवृक्ष का बीज-वपन जिन्होंने किया था वे हमारे वेदकालीन ऋषिगण थे । कितनी शताब्दियों पहले वे विराजमान थे, इसका हिसाब लगाकर प्रामाणिक रूप से बतलाने के लिए आधुनिक अनुसंधान के पास कोई साधन नहीं। हिमालय पर्वत का उद्‌भव कब हुआ, इसे कौन जानता है ? वेदकालीन ऋषिगण किस युग में हुए, इसे कैसे बतायें ?

श्री रामकृष्ण परमहंस कहते है — "प्रार्थना करते समय प्रार्थना दिल की गहराई से

---

1. भूमिका ˉ ।त्र यहां दी गयी है ।

निकलनी चाहिए। थोड़े दिन तक सब्र करते रहें तो मेरी माता जगत अंबिका आपकी प्रार्थना पूरी करेगी।"

परमहंस महाराज ने खूब कहा है – दिल की गहराई से निकली प्रार्थना को 'मंत्र' कहते हैं । मंत्र फलवान होगा । लेकिन यह साधना सुलभ नहीं । दिल की गहराई अतल है, अगम्य है, अगाध है । मानव ने समुद्र की गहराई की थाह ली है । मगर दिल की गहराई की थाह लेना इससे कई गुना कठिन है । फिर भी निराश होने की जरूरत नहीं। हर एक अपने-अपने हृदय-सागर की गहराई मे यथासाध्य निमग्न होकर, अनूठी वस्तुएं प्राप्त कर सकता है । जितनी गहराई तक तेरी पहुंच है, उतने अनूठे मोती हाथ लगेंगे।

ऋषि लोग निश्चल मन के होते हैं । इसलिए आसानी से मन की गहराई में निमग्न होकर वहां से 'मंत्र' को ले आये । इन मंत्रों से देवतागण वश में होते हैं । कोरे शब्द की कोई महिमा नहीं । यदि वह शब्द हृदय की दृढ़ता को प्रकट कर सके तो "जैसे तुम्हारे विचार होते हैं तुम वैसे ही बन जाते हो", "जैसा करते हो वही बनते हो" – यह सत्य वचन अमर है । चिंतन, दृढ़ चिंतन, अविचलित चिंतन – शीघ्र ही यह चिंतन सर्वविदित, सार्वभौमिक सत्य में परिणत हो जायेगा। 'इंद्रन' नाम वैज्ञानिक शक्ति को मधुचंद ऋषि ऊपर कहे गये शक्तिसंपन्न मंत्रों द्वारा स्थापित करते हैं । ये मंत्र कविता द्वारा उद्भासित हैं ।

ऋग्वेद में ऋषियों की कविता का अध्ययन करते वक्त हमारे हृदय में मधु प्रवाहित होता है । बुद्धि ईश्वरीय भाव से मस्त हो उठती है ।

तराजू [1]

पिछले सप्ताह मद्रास में कंदस्वामी मंदिर के वसंत मंडप में साधु महासंघ के तत्वावधान में एक सभा हुई। सुना है, स्वामी अद्‌भुतांदर ने एक सुंदर भाषण दिया था ।

स्वामी जी के भाषण का संक्षिप्त सार यों है – धर्म संबंधी विषयों में हमारे पूर्वजों ने महत्वपूर्ण विवेचनाएं की हैं । हमें इन्हें अच्छी तरह हृदयंगम करके दुनिया को उपदेश देना है । अमेरिका व यूरोप देशवासी इस विषय में हमारी सहायता की प्रतीक्षा में हैं ।

धर्म संबंधी बातों से अभिप्राय पारमार्थिक सचाइयां हैं । अर्थात् पंचेंद्रियों के लिए अगोचर, शुद्ध बुद्धि द्वारा जानने योग्य अलौकिक सचाइयां । ये तो ज्ञान, भक्ति एवं योग द्वारा होने वाले हैं । हमारे पूर्वजों ने अथक परिश्रम और कड़ी साधना के द्वारा इन्हें अपने ग्रंथों में संग्रहीत कर रखा है । इस अमूल्य निधि को हमें बड़ी सतर्कता से कुशलतापूर्वक उपयोग करके इस संसार के दुख, वेदना, अज्ञान को दूर करने के लिए दोनों हाथों से इसका दान देकर इस संसार की उन्नति में योग देना है ।

तिरुवळ्ळुवर ने कहा है –

"ताम् इंबुरुवदु उलगु इंबुरक्कंडु
कामुरुवर् करद्ररिंदार।"

अपने लिए आनंदप्रद 'शिक्षा से ही संसार को भी आनंदित देखकर बुद्धिमान उसके अधिकाधिक उपार्जन की इच्छा करेंगे' स्वामी अद्‌भुतांदर का विचार भी यही है । मैं भी इसे पूर्णरूप से स्वीकार करता हूं । लेकिन हमें यही नहीं करना है । दुनिया लौकिक बातों के लिए हमारी प्रतीक्षा में है । इसे हमें नहीं भूलना चाहिए । यह नहीं सोचना चाहिए कि हमारे पूर्वजों ने पारमार्थिक विषयों के क्षेत्र में ही अद्वितीय उन्नति की थी । वे लौकिक ज्ञान के क्षेत्र में भी आश्चर्यजनक उन्नति कर चुके थे । विभिन्न देश और उनके कला-कौशल, साहित्य के बारे में मेरे एक मित्र को अच्छा ज्ञान है । उनका विचार है कि यूरोप में बहु-प्रशंसित ग्रीक की शिलामूर्तियों से भी हमारे देश की शिल्पकला उत्कृष्ट है । दुनिया को इतना स्पष्टीकरण देने के उद्देश्य से आनंदकुमार स्वामी जैसे प्रतिभाशाली व्यक्ति बड़ी कोशिश कर रहे हैं । लेकिन यहां तमिलनाडु में रहने वाले लोगों में इस सचाई को समझने वाला कोई दिखाई नहीं देता । कई देशों के संगीतों का मैंने एक हद तक तुलनात्मक विवेचन किया है । मेरा निष्कर्ष तो यही है कि हमारे प्राचीन शास्त्र की बराबरी करने वाला संगीत

---

1. 'तराजू' शीर्षक निबंध का एक अंश यहां प्रस्तुत किया गया है ।

इस संसार में कहीं नहीं है । कविता के विषय में भी यही बात है । गणित, रसायनशास्त्र इत्यादि कई शास्त्र हमारे देश में ही पहले-पहल विकसित हुए थे ।

हां, हमें लौकिक ज्ञान के क्षेत्र में भी उन्नति करनी है । जिन शास्त्रों से हम अनभिज्ञ हैं, उन्हें दूसरों से संग्रह करना है । फिर तो उन्हें अपनी बुद्धि व परिश्रम से परिपुष्ट करके, पुनः दुनिया को देना है । भौतिक क्षेत्र के विकास में हमें ही आगे रहना है । अकेले हम इसके योग्य हैं । आशा है, बंबई कांग्रेस के अधिवेशन में भाग लेने के लिए विभिन्न प्रांतों से जो प्रतिनिधि आने वाले हैं, उनमें कुछ महिलाएं भी होंगी । मालूम होता है, प्रतिनिधियों के सहायतार्थ नियत सेवा दल के स्वयंसेवकों के समान ही महिला प्रतिनिधियों की मदद करने के लिए स्वयंसेविकाएं भी लगी हैं । मेरे विचार में यह देश की भलाई का सूचक है ।

हाय रे ! .... एक बात कहना भूल ही गया था । युवानशी-काय – चीन देश के लोकतंत्र का नेता, अब तक जो कच्चा फल थे पकते जा रहे हैं । पूर्व के राजवंशों को मिटाने के लिए भगीरथ प्रयत्न करके, चीन देश के लोगों ने लोकतंत्र कायम किया था । युवानशी-काय के पास सेना का बल था, इसलिए उस लोकतंत्र का अध्यक्ष बनना इनके लिए आसान हो गया था। दिन बीतते-बीतते, बहुत शीघ्र ही, युवान के मन में इस ज्ञान का उदय होने लगा कि अब लोकतंत्र की अपेक्षा राजतंत्र प्रणाली ही चीन के लिए उपयुक्त है । दुनिया ने सोचा – इन महाशय को स्वयं राजा बनने की धुन सवार हो गयी है अब अफवाह चल रही है, राजकुमार से ये अपने बेटी की शादी कराना चाहते हैं । इसलिए अपने देश के ज्योतिषियों से मेरा नम्र निवेदन है कि वे इसका पता लगायें कि चीन का लोकतंत्र और कब तक जीवित रहेगा ? उसकी जन्मपत्री का विवरण चाहिए तो दूंगा ।

उक्त लोकतंत्र में राहु उच्च स्थान में है । दूसरी जगह पर शनीचर है । शनीचर पंगु। यह तो हर कोई जानता है। अन्य सभी ग्रह वक्र गति हैं । इसका फल मैं बता सकूंगा। मगर ज्योतिषशास्त्र की बारहखड़ी भी मुझे नहीं मालूम ।

चेय्यूर से एक बूढ़े के विवाह के संबंध में श्री मादवय्या ने जो पत्र लिखा था वह कुछ दिनों के पहले 'स्वदेशमित्रन्' में प्रकाशित हुआ था ।

बूढ़े की उम्र सत्तर वर्ष है । उसकी मां अब तक जीवित है। उसकी दादी की उम्र तो अट्ठानवे वर्ष है। इस वृद्धा माता, और अपनी सेवा-टहल करने के लिए यह बूढ़ा सोलह साल की एक युवती से विवाह करने वाला है । मालूम होता है, इस बूढ़े के पास और इक्कीस युवती कुंआरियों की जन्म-कुंडली आयी है । आखिर लड़की का पिता धन, विधि और ज्योतिष पर विश्वास करके विवाह कराने पर तुल जाता है । ईश्वर पर विश्वास करनेवाला सा नहीं दिखता ।

ऊंट का क्या कोई एक अंग ही टेढ़ा है ? ओह ! तमिलनाडु को किसी एक बात पर दुख है क्या ?